285

## माध्यमिक

# नाट्यकला

## प्रायोगिक पुस्तिका

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

285

## माध्यमिक स्तर

# नाट्यकला

## प्रायोगिक पुस्तिका


विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

**राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान**

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्थान)

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- 62

नोएडा - 201 309 (उत्तर प्रदेश)

वेबसाइट : www.nios.ac.in निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393

आईएसओ 9001: 2008 प्रमाणित

© राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान National Institute of Open Schooling

प्रथम संस्करण 2023 First Edition 2023 ( Copies)

ISBN (Book 1)

ISBN (Book 2)

सचिव, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- 62 नोएडा - 201309
(उत्तर प्रदेश) द्वारा प्रकाशित। .......................... द्वारा मुद्रित।

## सलाहकार समिति

**प्रो. सरोज शर्मा**
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

**डॉ. राजीव कुमार सिंह**
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

## पाठ्यचर्या निर्माण समिति

**प्रो. गिरीश्वर मिश्र (समिति अध्यक्ष)**
पूर्व-कुलपति
महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, वर्धा
महाराष्ट्र-442005

**प्रो. राम नाथ झा**
आचार्य, संस्कृत तथा प्राच्य विद्या संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

**प्रो. बलराम शुक्ल**
आचार्य, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

**श्री अमिताभ श्रीवास्तव**
नाट्यकला विशेषज्ञ, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली

**डॉ. राम नारायण मीणा**
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
एवं समन्वयक- भारतीय ज्ञान परंपरा पाठ्यक्रम
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा, (उत्तर प्रदेश)

**श्री अर्जुन देव चारण**
उपाध्यक्ष, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली
एवं संस्थापक रम्मत थियेटर ग्रुप, जोधपुर (राजस्थान)

**प्रो. रजनीश मिश्रा**
आचार्य, संस्कृत तथा प्राच्य विद्या संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

**प्रो. पवन कुमार शर्मा**
आचार्य,
चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय,
मेरठ, उत्तर प्रदेश

**डॉ. प्रवीण तिवारी**
सह-आचार्य,
महात्मा ज्योतिबा फुले रोहिलखण्ड
विश्वविद्यालय, बरेली, उत्तर प्रदेश

**श्री आसिफ अली हैदर खान**
नाट्यकला विशेषज्ञ, राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली

## पाठ लेखक

**प्रो. मीरा द्विवेदी**
आचार्य, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

**डॉ. दानिश इकबाल**
सहायक आचार्य (थियेटर), एजेकेएमसीआरसी
जामिया मिलिया इस्लामिया केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली

**डॉ. राम नारायण मीणा**
सहायक निदेशक (शैक्षि)
एवं समन्वयक- भारतीय ज्ञान परंपरा पाठ्यक्रम
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा, (उत्तर प्रदेश)

**डॉ. योगेश शर्मा**
सह-आचार्य,
कलाकोश विभाग, इन्दिरा गांधी कलाकेन्द्र, नई दिल्ली

**डॉ. मुकेश कुमार मिश्रा**
सहायक आचार्य, देशबंधु कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

**डॉ. त्रिलोक चंद अवस्थी**
सहायक आचार्य, संस्कृत,
दर्शन तथा वैदिक विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

**सुश्री आकृति ठाकुर**
अनुसंधात्री, संस्कृत, दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

## संपादक मण्डल

**प्रो. राम नाथ झा**
आचार्य, संस्कृत तथा प्राच्य विद्या संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

**प्रो. रजनीश मिश्रा**
आचार्य, संस्कृत तथा प्राच्य विद्या संस्थान,
जे.एन.यू. नई दिल्ली

**डॉ. राम नारायण मीणा**
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
एवं समन्वयक- भारतीय ज्ञान परंपरा पाठ्यक्रम
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा, (उत्तर प्रदेश)

**डॉ. राम चंद्र**
सहायक आचार्य, श्यामा प्रसाद मुखर्जी कॉलेज ऑफ वीमेन
दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

## पाठ्यक्रम समन्वयक

**डॉ. राम नारायण मीणा**
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
एवं समन्वयक- भारतीय ज्ञान परंपरा पाठ्यक्रम
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा, (उत्तर प्रदेश)

## ग्राफिक डिजाइनर एवं टीटीपी कार्य

**मल्टी ग्राफिक्स**
करोल बाग, नई दिल्ली

# आप से दो बातें...

**समन्वयक वचन**

प्रिय जिज्ञासु,

**ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तुसह वीर्य करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥**
**ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥**

परंपरा को आधार मानकर यह प्रार्थना है कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वी हो। द्वेष भावना का नाश करने वाला हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों का निवारण करने वाला हो।

'भारतीय ज्ञान परंपरा' पाठ्यक्रम के अंगभूत नाट्यकला का यह पाठ्यक्रम माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठ्यक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ।

विद्वानों का अभिप्राय और अनुभवों के आधार पर नाट्य का फल रस का आस्वादन है। आनंद रस स्वरूप ही है। सभी प्राणियों का सभी कार्य आनंद और सुखपूर्वक सम्पन्न हों, यहीं प्रबल इच्छा है।

इस नए पाठ्यक्रम का उद्देश्य आपके मन में देश और संस्कृति के प्रति गौरव की भावना का विकास करना, संस्कृति की रक्षा के लिए उचित प्रयत्न करने वाले श्रद्धावान शिक्षार्थियों को प्रेरित करना है तथा प्राचीन भारतीय ज्ञान, संपदा, वैज्ञानिकता, सभी मनुष्यों के प्रति उपकारिकता की भावना का गर्व से जगत में प्रचार-प्रसार कर पाने में सक्षम बनाना, हमारे देश की नाट्य परंपरा को सामान्य जन मानस के लिए सर्व-सुलभ बनाना, भारतीय नाटककारों तथा उनकी कृतियों के प्रति सम्मान की भावना का विकास करना, नाट्य के विविध तत्त्वों (कथावस्तु, पात्र, रस, अभिनय, रंगमंच) से शिक्षार्थियों को परिचित कराना, नाट्य निर्माण से संबंधित यथा- नाट्य चयन, नाट्य निर्माण, नाट्य क्रियान्वयन हेतु मंच सज्जा, प्रकाश-ध्वनि-प्रभाव आदि से अवगत कराना है। यह पाठ्यक्रम शिक्षार्थी को एक उत्तम 'सहृदय' के रूप में परिवर्तित करने में भी सक्षम होगा।

शिक्षार्थी पाठों को अच्छी तरह से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अंत में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएं। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणी करनी चाहिए। पाठ के अन्त में दिये प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ।

शिक्षार्थी अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर के समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्र द्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्क व्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

यह पाठ्य विषय आपके ज्ञान को बढ़ाए, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, आपकी विषय में रुचि बढ़ाए, आपका मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करता हूँ।

**अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं में हार्दिकी प्रार्थना**
**ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥**

**भवत्कल्याणकामी,**
**पाठ्यक्रम समन्वयक**
**राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान**

# अपने पाठ कैसे पढ़ें!

नाट्यकला विषय, माध्यमिक स्तर की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकेत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें।

**पाठ का शीर्षक** : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

**भूमिका** : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

**उद्देश्य** : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ के उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

**पाठगत प्रश्न** : इसमें एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित है इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

**आपने क्या सीखा** : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है- कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

**पाठांत प्रश्न** : पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिखकर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केन्द्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी सकते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं। इन्हीं में कुछ प्रायोगिक प्रश्न पूछे गए हैं। पाठ का अध्ययन कर आप उस प्रकार का प्रयोग कर सकते हैं।

**उत्तरमाला** : आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

# पाठ्यक्रम

## नाट्यकला

**मॉड्यूल-1 नाट्यकला का परिचय**

1. भारत की नाट्य परंपरा : परिचय एवं इतिहास
2. नाट्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय
3. नाट्यकला तथा अन्य कलाएँ

**मॉड्यूल-2 नाट्य के प्रमुख अंग**

4. कथावस्तु परिचय
5. पात्र-योजना
6. अभिनय परिचय

**मॉड्यूल-3 रस विमर्श**

7. रस की अवधारणा तथा रससूत्र विमर्श
8. सहृदय की अवधारणा

**मॉड्यूल-4 भारतीय नाटकों का परिचय**

9. प्रतिमानाटक
10. नागानंद
11. कुंदमाला
12. भारत दुर्दशा

**मॉड्यूल-5 रंगमंच : तकनीक और अभिकल्पना**

13. रंगमंच : परिचय तथा प्रकार
14. रंग संगीत

## प्रायोगिक पक्ष

**मॉड्यूल-6 अभिनय के प्रकार : प्रायोगिक पक्ष**

1. आंगिक अभिनय : भेदोपभेद
2. वाचिक अभिनय
3. आहार्य अभिनय
4. सात्विक अभिनय

**मॉड्यूल-7 नाट्य का प्रायोगिक पक्ष**

5. रंगमंच तकनीक : एक परिचय
6. प्रबोधचंद्रोदय

# पाठ्यक्रम


| क्र. सं. | विषय सूची | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| **मॉड्यूल-6 अभिनय के प्रकार : प्रायोगिक पक्ष** | | |
| 1. | आंगिक अभिनय : भेदोपभेद | 01-08 |
| 2. | वाचिक अभिनय | 09-20 |
| 3. | आहार्य अभिनय | 21-32 |
| 4. | सात्विक अभिनय | 33-46 |
| **मॉड्यूल-7 नाट्य का प्रायोगिक पक्ष** | | |
| 5. | रंगमंच तकनीक : एक परिचय | 47-66 |
| 6. | प्रबोधचंद्रोदय | 67-78 |
| ● | आदर्श प्रश्न पत्र (प्रायोगिक पक्ष) | 79 |

**राट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संथान**

विषय–नाट्यकला (285)

| पाठ्यक्रम विभाजन–नाट्यकला (285) माध्यमिक स्तर | | |
|---|---|---|
| कुल पाठ – 14 | | |
| मॉडयूल<br>कुल अंक–60 | शिक्षक अंकित मूल्यांकन पत्र (TMA) | सार्वजिनक परीक्षा (Public Examination) |
| | (कुल पाठ–5) | (कुल पाठ–9) |
| 1. नाट्यकला का परिचय (अंक–12) | 1. भारत की नाट्य परंपरा : परिचय एवं इतिहास | 2. नाट्यशास्त्र का संक्षिप्त परिचय<br>3. नाट्यकला तथा अन्य कलाएँ |
| 2. नाट्य के प्रमुख अंग (अंक–12) | 4. कथावस्तु परिचय | 5. पात्र–योजना<br>6. अभिनय परिचय |
| 3. रस–विमर्श (अंक–8) | – | 7. रस की अवधारणा तथा रससूत्र विमर्श<br>8. सहृदय की अवधारणा |
| 4. भारतीय नाटकों का परिचय (अंक–20) | 9. प्रतिमानाटक<br>10. नागानंद | 11. कुंदमाला<br>12. भारत दुर्दशा |
| 5. रंगमंच : तकनीक और अभिकल्पना (अंक–8) | 13. रंगमंच : परिचय तथा प्रकार | 14. रंग संगीत |

*इस पाठों से वस्तुनिष्ठ तथा विषयनिष्ठ दोनों प्रकार के प्रश्न दिए जाएंगे

| **मॉडयूल** | **सार्वजिनक परीक्षा (प्रायोगिक पक्ष)** | **कुल अंक–40** |
|---|---|---|
| 6. अभिनय के प्रकार: प्रायोगिक पक्ष | 1. आंगिक अभिनय : भेदोपभेद<br>2. वाचिक अभिनय<br>3. आहार्य अभिनय<br>4. सात्विक अभिनय | 25 |
| 7. नाट्य का प्रायोगिक पक्ष | 5. रंगमंच तकनीक : एक परिचय<br>6. प्रबोधचंद्रोदय | 15 |

# मॉड्यूल-6

**अभिनय के प्रकार : प्रायोगिक पक्ष**

इस मॉड्यूल में चतुर्विध अभिनय-आंगिक, वाचिक, आहार्य तथा सात्त्विक अभिनय पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसके अंतर्गत हम अभिनय के प्रायोगिक पक्ष पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है।

1. आंगिक अभिनय : भेदोपभेद
2. वाचिक अभिनय
3. आहार्य अभिनय
4. सात्विक अभिनय

# 1

# आंगिक अभिनय : भेदोपभेद

पूर्व पाठ में अभिनय के स्वरूप की चर्चा की गई है। इस पाठ में अभिनय-प्रकारों में से एक आंगिक अभिनय के भेदोपभेदों का निरूपण किया जा रहा है। साथ ही आंगिक अभिनय के अलावा सामान्याभिनय पर भी इस पाठ में चर्चा करेंगे।

## अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत आप-

- आंगिक अभिनय का सामान्य परिचय जानते हैं;
- मुखजाभिनय को समझते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं;
- शरीराभिनय को समझते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं;
- चेष्टाक्रियाभिनय को समझते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं;
- सामान्याभिनय को जानते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं;
- आभ्यंतराभिनय को जानते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं; और
- बाह्याभिनय को समझते हैं और स्वयं से अभिनय कर पाते हैं;

## 1.1 आंगिक अभिनय: सामान्य परिचय

सामान्यत: शरीर के विविध अंगों, उपांगों एवं प्रत्यंगों की विविध चेष्टाओं एवं भावमुद्राओं द्वारा जिस सांकेतिक अर्थ का सृजन किया जाता है, वह आंगिक अभिनय है। आंगिक अभिनय तीन

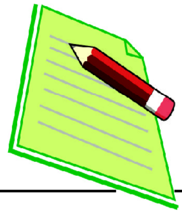



प्रकार का होता है- शरीरज, मुखज, और चेष्टाकृत अथवा चेष्टाक्रियाभिनय। शरीर के विभिन्न अंगों और प्रत्यंगों द्वारा प्रदर्शित अभिनय शरीरज कहलाता है। केवल उपांगों द्वारा प्रदर्शित अभिनय मुखज कहलाता है तथा चेष्टाओं द्वारा किया जाने वाला अभिनय चेष्टाकृत अभिनय या चेष्टाक्रियाभिनय होता है। अंग छह हैं- नेत्र, भ्रू, नासिका, अधर, चिबुक और कपोल। प्रत्यंग की संख्या भी छह बतायी गई है, वे हैं- दोनों स्कन्ध, दोनों बाहु, पीठ, उदर, दोनों उरु और दोनों जंघा। कुछ आचार्य ग्रीवा को तो कुछ स्कन्ध को सातवाँ अंग मानते हैं। कुछ नाट्याचार्य दोनों मणिबन्ध, दोनों जानु और दोनों घुटने को अतिरिक्त प्रत्यंग मानते हैं तो कुछ आचार्य ग्रीवा को प्रत्यंग मानते हैं।

## 1.2 आंगिक अभिनय के भेदोपभेद

आंगिक अभिनय के अन्तर्गत आने वाले अभिनय-भेदों के भेदोपभेदों का विवेचन नाट्यशास्त्र में इस प्रकार प्राप्त होता है -

1. **शिरोभिनय** - शिर द्वारा किया जानेवाला अभिनय शिरोभिनय है। यह 13 प्रकार का होता है - आकम्पित, कम्पित, धुत, विधुत, परिवाहित, आधूत, अवधूत, अञ्चित, निहञ्चित, परावृत, उत्क्षिप्त, अधोगत और लोलित।

2. **हस्ताभिनय** - पाठ्य के अनुकूल हाथ एवं अंगुलियों की विभिन्न मुद्राएँ बनाना हस्ताभिनय है। हस्ताभिनय को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है - असंयुत हस्ताभिनय, संयुतहस्ताभिनय एवं नृत्तहस्त। इनका क्रमशः उल्लेख इस प्रकार किया जाता है -

   (i) असंयुत हस्ताभिनय का अर्थ है - एक हाथ से प्रदर्शित हस्तमुद्राएँ। ये संख्या में 24 हैं - पताक, त्रिपताक, कर्त्तरीमुख, अर्द्धचन्द्र, अराल, शुकतुण्ड, मुष्टि, शिखर, कपित्थ, कटकामुख, सूच्यास्य, पद्मकोश, सर्पशीर्ष, मृगशीर्ष, काङ्गुल, अलपद्म, चतुर, भ्रमर, हंसास्य, हंसपक्ष, संदंश, मुकुल, ऊर्जनाम और ताम्रचूड़।

   (ii) संयुत हस्ताभिनय का अर्थ है - दोनों हाथों के संयोग से प्रदर्शित हस्त मुद्राएँ। ये संख्या में तेरह हैं - अञ्जलि, कपोत, कर्कट, स्वस्तिक, कटकावर्धमान, उत्संग, निषध, दोल, पुष्पपुट, मकर, गजदन्त, अवहित्थ तथा वर्धमान।

   (iii) नृत्तहस्त - अभिनय में सौन्दर्य विधान के लिए संयुत एवं असंयुत हस्ताभिनयों के विविध रूपों के आधार पर विहित हस्तक्रिया को नृत्तहस्त कहा जाता है। नृत्तहस्त नृत्य के समय हाथों को चलाने एवं हस्त मुद्राओं के प्रयोग करने का ढंग है। नृत्तहस्त तीस हैं - चतुरस्र, उद्वृत्त, तलमुख, स्वस्ति, विप्रकीर्ण, अराल, कटकामुख, आविद्धवक्र, सूच्यास्य, रेचित, अर्धरेचित, उत्तानवञ्चित, पल्लव, नितम्ब, केशबन्ध, लता, करिहस्त, पक्षवञ्चित, पक्षप्रद्योतक, गरुड़पक्ष, दण्डपक्ष,

टिप्पणी

ऊर्ध्वमण्डलिन्, पार्श्वमण्डलिन्, उरोमण्डली, उर:पार्श्वमण्डली, मुष्टिस्वस्तिक, नलिनीपद्मकोश, अलपल्लव, उल्वण, ललित और वलित।

3. **कटिकर्म** - कटि (कमर) का अभिनय कटिकर्म कहलाता है। यह पाँच प्रकार का होता है - छिन्ना, निवृत्ता, रेचिता, कम्पिता, और उद्वहिता।

4. **उर: कर्म या वक्षकर्म** - वक्ष की विविध मुद्राओं के द्वारा अभिनय वक्षकर्म है। वक्षकर्म पाँच हैं - आभुग्न, निर्भुग्न, प्रकम्पित, उद्वाहित और सम।

5. **पार्श्व कर्म** - पार्श्वकर्म भी पाँच हैं - नत, समुन्नत, प्रसारित, विवर्त्तित और अपसृत।

6. **पादाभिनय** - पैरों से किया जानेवाला अभिनय पादाभिनय है। ये संख्या में पाँच हैं - उद्घट्टित, सम, अग्रतलसञ्चर, अञ्चित और कुञ्चित। अन्य आचार्य सूचीपाद की गणना भी पादाभिनय में करते हैं।

7. **उदरकर्म** - यहाँ तीन प्रकार के उदरकर्म का उल्लेख मिलता है, वे हैं - क्षाम, खल्व और पूर्ण।

8. **उरु कर्म** - यहाँ पाँच प्रकार के उरु कर्म की चर्चा है - कम्पन, वलय, स्तम्भन, उद्वर्तन और निवर्त्तन।

9. **जंघाकर्म** - जङ्घाकर्म पाँच हैं - आवर्तित, नत्, क्षित्त, उद्वाहित और परिवृत्त।

10. **मुखज कर्म/अभिनय** - मुखज कर्म के छह प्रकार की चर्चा प्राप्त होती है, वे हैं, विधुत, विनिवृत्त, निर्भुग्न, भुग्न, विवृत्त और उद्वाही। तिरछा फैलाये हुए मुख को विधुत कहते हैं। खुला हुआ मुख विनिवृत्त कहलाता है। नीचे की ओर झुका हुआ मुख निर्भुग्न कहलाता है। थोड़ा फैला हुआ मुख भुग्न कहलाता है। ओठों के साथ खुला हुआ मुख विवृत्त कहलाता है तथा ऊपर की ओर उठा हुआ या खुला हुआ मुख उद्वाहि कहलाता है। मुखज कर्म के साथ ही मुखराग का वर्णन भी प्राप्त होता है। मुखराग से तात्पर्य है - नट के द्वारा अभिनेय वस्तु के भाव के अनुकूल मुख के रंग को बनाना। यहाँ रंग के लेपन के बिना ही मुख के राग को परिवर्तित किया जाता है। स्वाभाविक, प्रसन्न, रक्त और श्याम - ये मुखराग के चार भेद हैं।

11. **नेत्र/दृष्टि अभिनय** - मनुष्य के नयनों की भाषा और भाव भंगिमा में ही नाट्य की प्रतिष्ठा है। नेत्र की भाषा व भंगिमा अभिनय व प्रदर्शन का मुख्य हेतु है। यहाँ आठ रस दृष्टियों, आठ स्थायिभाव दृष्टि तथा बीस संचारीभाव दृष्टि की विवेचना प्राप्त होती है। आठ रस दृष्टियाँ हैं - कान्ता, भयानका, हास्या, करुणा, अद्भुता, रौद्री, वीरा और वीभत्सा। इन रसदृष्टियों के सम्यक् विनियोग से विविध रसों का सृजन होता है। स्थायिभावदृष्टि आठ हैं - स्निग्धा, दृष्टा, दीना, क्रुद्धा, दृप्ता, भयान्विता, जुगुप्सिता और

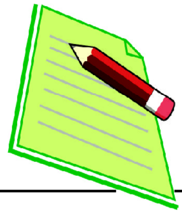



विस्मिता। संचारी दृष्टियाँ बीस हैं – शून्या, मलिना, श्रान्ता, लज्जान्विता, ग्लाना, शंकिता, विषादिनी, मुकुला, कुंचिता, अभितप्ता, जिह्वा, ललिता, वितर्किता, अर्धमुकुला, विभ्रान्ता, विप्लुता, आकेकरा, विकोशा, त्रस्ता और मदिरा।

12. **भ्रूकर्म** – भ्रूकर्म सात हैं – उत्क्षेप, पातन, भ्रुकुटि, चतुर, कुंचित, रेचित और सहज। भौहों को बारी-बारी से उठाना उत्क्षेप, क्रमशः नीचे की ओर उतारना पातन, भौहें के मूलों का एक साथ समुन्नयन भृकुटी, भृकुटियों की मधुरता एवं विस्तार चतुर, भौहों को क्रमशः धीरे या एक साथ झुकाना कुञ्चित, ललित उत्क्षेप रेचित, स्वाभाविक स्थिति में रहना सहज है।

13. **नासिका कर्म** – नासिका के द्वारा किया गया अभिनय नासा कर्म है। इनके छह प्रकार निम्नलिखित हैं – नता, मन्दा, विकृष्टा, सोच्छ्वासा, विकूणिता और स्वाभाविकी।

14. **अधर कर्म** – अधरोष्ठ के द्वारा किया गया अभिनय अधरकर्म या अधरोष्ठ कर्म कहलाता है। अधरोष्ठ कर्म छह हैं – विवर्तन, कम्पित, विसर्ग, विनिगूहन, संदष्टक, समुद्ग।

15. **चिबुक कर्म** – ठुड्डी द्वारा किया गया अभिनय चिबुक कर्म है। यद्यपि दन्त, जिह्वा और ओष्ठ के संचालन में चिबुककर्म होता है, किन्तु चिबुककर्म के लक्षण दन्तक्रिया के लक्षण हैं। चिबुक कर्म या दन्त कर्म सात हैं – कुट्टन, खण्डन, छिन्न, चुक्कित, लोहित, सम और दष्ट।

16. **कपोल कर्म** – कपोल कर्म को गण्ड कर्म भी कहते हैं, जो संख्या में छह हैं – क्षाम, फुल्ल, पूर्ण, कम्पित, कुंचित और सम। आंगिक अभिनय के विवेचनक्रम में चारी-विधान, गतिविधान, शयन और आसन की चर्चा भी प्राप्त होती है। आंगिक अभिनय के अन्तर्गत पुत्तलिका कर्म, अवलोकन, पुटकर्म और ग्रीवा कर्म का भी उल्लेख हुआ है, जिसका विवरण क्रमशः इस प्रकार हैं –

1. **पुत्तलिका कर्म** – अभिनयकाल में पुत्तलिका कर्म महत्त्वपूर्ण है। आँखों की पुतलियों के माध्यम से होने वाली विभिन्न प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति पुत्तलिका कर्म या तारा अभिनय है। पुत्तलिका कर्म या ताराकर्म के नौ प्रकार हैं – भ्रमण, वलन, पातन, चलन, प्रवेशन, विवर्त्तन, समुद्वृत्त, निष्क्राम और प्राकृत। कुछ आचार्यों ने इसे आत्मनिष्ठ ताराकर्म कहा है।

2. **अवलोकन या दर्शन भेद** – ये आठ हैं। कुछ आचार्य इसे विषयाभिमुख ताराकर्म कहते हैं। यहाँ इसके आठ भेदों की चर्चा है – सम, साची, अनुवृत्त, आलोकित, विलोकित, प्रलोकित, उल्लोकित और अवलोकित।

3. **पुटकर्म** – पुत्तलियों की गति का अनुसरण करनेवाला पुटकर्म है। ये संख्या में नौ हैं उन्मेष, निमेष, प्रसृत, कुञ्चित, सम, विवर्त्तित, स्फुरित, पिहित और विताड़ित।

4. **ग्रीवाकर्म** – ग्रीवा का अर्थ है गर्दन। ग्रीवा के माध्यम से किया गया अभिनय ग्रीवा कर्म है। ग्रीवा पर ही शिरों का सारा अभिनय आधारित होता है। इसलिए अभिनय में ग्रीवा का अत्यधिक महत्त्व है। ग्रीवा कर्म नौ हैं – समा, नता, उन्नता, त्र्यस्रा, रेचिता, कुञ्चिता, अञ्चिता, वलिता और विवृत्ता।

## पाठगत प्रश्न 1.1

1. शिरोमणि क्या होता है?

2. हाथ से प्रदर्शित मुद्राएं कितनी होती है?

3. कटिकर्म क्या होता है?

4. पार्श्वकर्म कितने होते हैं?

5. कितने प्रकार के उदरकर्म का उल्लेख मिलता है?

6. ग्रीवाकर्म कितने होते हैं?

## 1.3 सामान्याभिनय

नाट्यशास्त्र में आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक इन चार अभिनय-प्रकारों के अतिरिक्त सामान्याभिनय की चर्चा भी प्राप्त होती है। सामान्याभिनय के अन्तर्गत भी उक्त चार प्रकारों का निरूपण मिलता है। विषय के अनुरूप यहाँ आंगिक अभिनय की दृष्टि से विवेचन किया जा रहा है–

संपूर्ण अभिनयों में जो रूप अवशिष्ट है अर्थात् कवि और नट की शिक्षा के लिए जिसे पहले नहीं कहा गया है, वह सामान्य अभिनय है। सामान्य अभिनय, अभिनय का विषय होने के कारण अभिनयों में सामान्य है। हाव, भाव, हेला आदि सात्त्विक अभिनय, वाक्यादि छह प्रकार के आंगिक अभिनय और आलाप-प्रलापादि वाचिक अभिनय, जो पूर्व में अनुक्त रह गया था, सामान्याभिनय द्वारा उसका कथन किया जाता है। सामान्याभिनय के अन्तर्गत छह प्रकार के शारीराभिनय का विवेचन किया जाता है, वे हैं – वाक्य, सूचा, अंकुर, शाखा, नाट्यायित और निवृत्यङ्कुर। आचार्य भरत कहते हैं कि जहाँ पर शिर, हस्त, कटि, वक्ष, जंघा, उरु और करणों में समानरूप से कर्मविभाग प्रस्तुत किया जाता है, वह सामान्याभिनय है। यहाँ रस-भाव से युक्त नाट्यवेत्ताओं के द्वारा कोमल आंगिक चेष्टाओं और ललित हस्त संचारों के द्वारा अभिनय

टिप्पणी



किया जाता है। इस क्रम में दो प्रकार के अभिनय की चर्चा प्राप्त होती है – (1) आभ्यन्तर और (2) बाह्य।

1. **आभ्यन्तराभिनय** – जो अभिनय अनुद्धत अर्थात् उद्धत स्वतंत्रता से रहित हो सम्भ्रम अर्थात् घबराहट से रहित हो, अंगों की चेष्टाएँ जहाँ आबिद्ध न हो, लय, ताल, कला एवं संगीत की ध्वनियों के प्रमाण अपने रूप में नियत हो, पदों को गाये जाने योग्य पदों का और ध्रुवाओं का आलाप विभक्त हो, निष्ठुरता से रहित हो, जहाँ कोलाहल नहीं हो, ऐसा अभिनय आभ्यन्तर कहलाता है।

2. **बाह्याभिनय** – पूर्वोक्त विशेषणों से युक्त नाट्य विपर्यस्त हो अर्थात् उपर्युक्त विशेषणों से शून्य हो, स्वतंत्र आचरण वाले पात्रों की चेष्टाएँ स्वच्छन्द हो, गीत, वाद्य, ताल, लय आदि अपने नियम में बँधे हुए नहीं हो, ऐसा अभिनय बाह्य कहलाता है।

उक्त प्रसंग में आचार्य भरत कहते हैं कि नाट्याचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों से युक्त तथा आभ्यन्तर लक्षणों से सम्पन्न वह अभिनय अभ्यन्तर अभिनय माना जाता है तथा आचार्यों के शासन से जो बाह्य होता है उसे बाह्य अभिनय कहा जाता है। यहाँ लक्षणों के द्वारा अभिनय एवं पात्रों की चेष्टागत क्रियाएँ लक्षित होती हैं। इसीलिए इस नाट्य में इन लक्षणों वाले अभिनय का सम्यक् प्रयोग किया जाता है। भरत कहते हैं कि जिन्होंने आचार्य की सेवा में निवास नहीं किया है, जो शासन से बहिष्कृत हैं, वे आचार्यों की क्रिया बिना जाने प्रयोग करते हैं। अत: वह बाह्य प्रयोग है।

## पाठगत प्रश्न 1.2

1. सम्पूर्ण अभिनयों में जो रूप अवशिष्ट है उसे क्या कहते हैं?

.................................................................................................................

2. सामान्याभिनय कितने प्रकार का होता है।

.................................................................................................................

3. सामान्याभिनय में कितने प्रकार के शारीरिक का उल्लेख मिलता है।

.................................................................................................................

4. सामान्याभिनय किसे कहते हैं।

.................................................................................................................

## आपने क्या सीखा

- सामान्यत: शरीर वे विविध अंगों, उपाङ्गों एवं प्रत्याङ्गों की विविध चेष्टाओं एवं भावमुद्राओं द्वारा जिस सांकेतिक अर्थ का सृजन किया जाता है, वह आंगिक अभिनय होता है।
- सिर द्वारा किया जाने वाला अभिनय शिरोभिनय कहलाता है।
- पाठ्य के अनुकूल हाथ एवं अंगुलियों की विभिन्न मुद्राएं बनाना हस्ताभिनय है।
- जहां सिर, हस्त, कटि, वक्ष, जंघा, अरूकरणों में समान रूप से कर्म विभाग प्रस्तुत किया जाता है, वह सामान्याभिनय कहलाता है।
- सामान्याभिनय अभ्यान्तर और बाह्य भेद से दो प्रकार का होता है।

## पाठांत प्रश्न

1. आंगिक अभिनय के भेदों में से किसी एक अभिनय को आधार बनाकर शिक्षार्थी स्वयं अभिनय करके दिखाएं।
2. नेत्र अभिनय को सीखकर शिक्षार्थी किसी एक रस दृष्टि का अभिनय करके दिखाएं।
3. पुत्तलिका कर्म को ठीक से समझकर शिक्षार्थी पुत्तलिका कर्म के नौ प्रकारों में से किसी एक का अभिनय करके दिखाएं।
4. 13 प्रकार के शिरोभिनय में से किसी एक अभिनय का शिक्षार्थी अभिनय करके दिखाएं।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**1.1**

1. सिर द्वारा किया जाने वाला अभिनय।
2. हस्त से प्रदर्शित मुद्राएं 24 हैं।
3. कटि (कमर) द्वारा किया जाने वाला अभिनय।
4. पाँच

5. तीन प्रकार

6. नौ

**1.2**

1. सामान्याभिनय

2. दो प्रकार का

3. छः प्रकार

4. जहां पर सिर, हस्त, कटि, वक्ष, जंघा उरू और करणों में समान रूप से कर्म विभाग प्रस्तुत किया जाता है।

# 2

# वाचिक अभिनय

अभिनय का पूरा कार्य व्यापार दो माध्यमों से संपन्न होता है- शारीरिक क्रियाएँ और संवाद अदायगी। रंगमंच पर शब्दों का उच्चारण भले ही पहली नजर में बहुत आसान लगे लेकिन उसका विज्ञान गायन की ही तरह जटिल कला है। एक अभिनेता के लिए गहरे और निरंतर प्रशिक्षण के साथ-साथ स्पीच एंड वॉइस की तकनीक को समझना बड़ा ही जरूरी है। जब पूरी तरह प्रशिक्षित अभिनेता अपनी आवाज और संवाद अदायगी को साधकर भूमिका के संवादों को बोलता है, तो दर्शकों मे चरित्र की कल्पना जीवंत हो जाती है और वे पूरी तरह चरित्र को सुनने लग जाते हैं।

एक अभिनेता होने के नाते आपको अपनी आवाज की सही पहचान होनी ही चाहिए। अभिनेता की आवाज ऐसी होनी चाहिए कि लोग वाचन और विचारों की अभिव्यक्ति के नये रूप को देखकर आश्चर्य चकित हो उठें। रंगमंच पर यदि सफल होना है तो अभिनेता को वाचिक अभिनय पर विशेष बल देना चाहिए। इसके महत्व का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि नाट्यशास्त्र के रचयिता भरत मुनि ने इसे अभिनय के एक मुख्य भेद के रूप में स्वीकारा है।

## अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप-

- वाचिक अभिनय का सामान्य परिचय जानते हैं;
- स्वर, स्थान, वर्ण, काकु, अलंकार तथा अंगों के विषय में जानते हैं तथा तदनुरूप अभिनय कर पाते हैं और
- चित्राभिनय तथा सामान्याभिनय के प्रयोग में वाचिक अभिनय के महत्व को जानते हैं तथा तदनुरूप अभिनय कर पाते हैं;

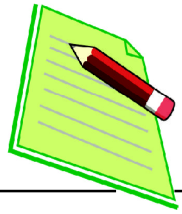

टिप्पणी

## 2.1 वाचिक अभिनय का सामान्य परिचय

संस्कृत मनीषियों ने नाट्य को दृश्य काव्य की संज्ञा दी है यानि एक ऐसा काव्य जिसे देखा जा सके। एक कवि कल्पनाओं के बिम्ब को शब्द प्रदान करता है और अभिनेता उन शब्दों को कल्पना के स्तर तक ले जाते हैं। आचार्य भरत ने आंगिक अभिनय करने के बाद वाचिक अभिनय की विस्तृत चर्चा की है। वाचिक अभिनय की शुरुआत दृश्यकाव्य के ध्वनि रूप के विश्लेषण के साथ किया है। नाट्यशास्त्र के 15वें अध्याय में भरत ने वाचिक अभिनय की चर्चा शुरु की है।

वास्तव में वाचिक अभिनय का संबंध अभिनेता के द्वारा बोले जाने वाले संवादों व ध्वनियों से है। जैसा कि आप जानते ही हैं कि संस्कृत नाटकों को पद्यात्मक शैली में लिखा जाता था। उसके सभी संवाद भी इसी शैली में होते थें। पद्य को कंठस्थ करना भी अपेक्षाकृत आसान होता है। तीव्र भावों और अर्थ को गहराई प्रदान करने के लिए भी यह जरूरी है कि शब्दों के साथ स्वर परिवर्तन हो और उनमें एक लयात्मकता हो। ऐसे में अभिनेता के लिए स्वरों का ज्ञान, शब्दों के साथ स्वर परिवर्तन और लय प्रयोग की जानकारी भी होनी चाहिए।

आचार्य भरत शब्दों पर विशेष प्रयत्न किये जाने का निर्देश देते हैं-

**वाचि यत्रस्तु कर्तव्यो नाट्यस्यैषा तनुः स्मुता।**
**अगनेपथ्यसत्वानि वाक्यार्थ व्यन्जयन्ति॥ (नाट्यशास्त्र-15/2)**

अर्थात कवि द्वारा काव्य के निर्माण और अभिनेता के प्रयोग में शब्द की महती भूमिका है। क्योंकि यही शब्द सारे नाट्यप्रदर्शन तथा सत्वाभिनय उसी शब्द के अर्थो की अभिव्यक्ति करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आंगिक, आहार्य और सात्विक अभिनय सभी वाचिक अभिनय के ही सहायक अभिनय हैं।

यदि वाचिक अभिनय शिथिल हो तो अन्य अभिनयों से नाट्यमंचन उतना प्रभावी नहीं हो सकता। वाचिक अभिनय में शब्द महत्वपूर्ण होते हैं। यह अत्यंत आवश्यक है कि अभिनेता को नाटक में प्रयुक्त भाषा के व्याकरण और शुद्ध उच्चारण का भली भाति ज्ञान हो ताकि वह वाक्य के अर्थ को ठीक तरीके से दर्शकों तक संप्रेषित कर सके। नाटक जिस भाषा में किया जाय, उसके अभिनेता को उस भाषा के व्याकरण का पूरी तरह ज्ञान होना चाहिए। यदि उसे इसका ज्ञान नही तो वह वाचिक अभिनय नहीं कर पायेगा।

### वाचिक अभिनय और भाषा

किसी भी भाषा में शब्दोच्चार का बड़ा महत्व है। उच्चारण के द्वारा ही हम भाषा पर अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। सामान्यतः यह देखा जाता है कि जो अभिनेता शुद्ध बोल नहीं पाते वे शुद्ध भाषा लिख भी नहीं पाते। पढ़े लिखे होकर भी बहुत सी ध्वनियों का सही उच्चारण नहीं कर

टिप्पणी

पाते क्योंकि वे घरेलू बोली के आदि होते हैं, जैसे- 'ष और श को स, य को ज, व को ब और क्ष को छ कहना।

आचार्य भरत ने प्राकृत पाठ को केन्द्र में रखकर अभिनेता के लिए भाषा विधान की चर्चा की है। प्राकृत पाठ्य क्या है? जब संस्कृत पाठ संस्कारों के गुणों से हीन हो जाता है और परिवर्तित हो जाता है तो प्राकृत पाठ्य कहलाता है। नाट्य में प्रयोग होने वाले चार प्रकार की भाषा- अतिभाषा (देवगण द्वारा प्रयुक्त), आर्यभाषा (भूपालों द्वारा प्रयुक्त), जातिभाषा (अनार्य तथा म्लेच्छों द्वारा प्रयुक्त) और जात्यन्तरी (ग्राम में तथा जंगल में रहने वाले पशुओं व पक्षियों द्वारा प्रयुक्त) बतायी है। नाट्य के विविध चरित्रों के लिए किन अवसरों पर संस्कृत व प्राकृत का प्रयोग किया जाय, यह भी भरत विस्तार से बताते हैं।

क्या यह संभव है कि एक संभ्रांत चरित्र निम्न वर्ग की भाषा में बात करे? हो सकता है कि आधुनिक रंगमंच में ऐसा कोई चरित्र हो परंतु नाट्यशास्त्र की शैलीगत संरचना चरित्र के अनुरूप भाषा (भाषिक अभिव्यक्ति का तरीका) के प्रयोग का समर्थन करती है। उदाहरण के लिए भरत संस्कृत पाठ्य का प्रयोग धीरोद्धत, धीरललित, धीरोदात्त और धीरप्रशांत नायकों के लिए प्रयोग किये जाने की बात कही है। इसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर नायकों के लिए प्राकृत पाठ के प्रयोग का भी उन्होंने निर्देश दिया। आचार्य भरत नाटक के अन्य पात्रों के लिए भी भाषा का विधान करते हैं। जैसे- जो पात्र जैन साधु, साधु भिक्षु या बाजीगर हों उन्हें प्राकृत पाठ का प्रयोग करना चाहिए, स्थिति आने पर महरानी, गणिका या शिल्पकारी जैसे स्त्री पात्र भी संस्कृत भाषा का व्यवहार कर सकते हैं, अप्सराओं के लिए संवाद संस्कृत में होने चाहिए किंतु जब वे पृथ्वी पर विचरण करें तो स्वाभाविक रूप से प्राकृत पाठ रखना चाहिए।

भरत नाटक में पाठ्य के दो प्रकार- संस्कृत और प्राकृत की चर्चा करते हैं। संभव है जब नाट्यशास्त्र लिखा गया होगा तब संस्कृत और प्राकृत का प्रचलन रहा होगा।

### स्वर

स्वर वे ध्वनियाँ हैं जो बिना मॉडुलेशन के उत्पादित होती हैं। भरत मुनि ने वाचिक अभिनय के आरंभ में चौदह स्वर बताए हैं। वे प्राय: ह्रस्व और दीर्घ होते हैं। वास्तव में ह्रस्व वे स्वर हैं जिनके उत्पादन में श्वास का एक छोटा हिस्सा खर्च होता है और दीर्घ में ज्यादा। मसलन-अ, इ, उ और ए-ह्रस्व हैं और आ, ई, ऊ और ऐ-दीर्घ। वाचिक अभिनय के आरंभ में स्वरों का ऐसा वर्गीकरण क्यों? संभवत: भरत स्वरों को संवाद की सबसे छोटी इकाई मानते हैं और स्पष्ट उच्चारण के लिए स्वरों की बनावट और उसके उच्चारण को समझना आवश्यक है।

### व्यंजन

व्यंजन वे वर्ण हैं जिनका उच्चारण बिना स्वरों के नहीं होता। व्यंजन का उच्चारण किस प्रकार

किया जाय? इसका निदान भी आचार्य भरत बतलाते हैं। प्रत्येक वर्ण को उन्होंने घोष और अघोष में विभक्त कर उनके उच्चारण स्थलों के बारे में बताया है-

क, ख, ग, घ, ङ, अ, ह वर्णों का उच्चारण कण्ठ स्थान से होता है।

च, छ, ज, झ, ञ, य, श का तालव्य।

ट, ठ, ड, ढ, ण, ऋ, र और ष का मूर्धन्य।

त, थ, द, ध, न, लृ, ल और स का दन्त्य

प, फ, ब, भ, म को ओष्ठ्य स्थान से उच्चरित बताया है।

जाहिर है कि वर्णों के सार्थक समूह ही मिलकर शब्द का निर्माण करते हैं और शब्दों का सार्थक समूह वाक्यों का निर्माण करता है। इस प्रकार संवादों के वाचन की दूसरी इकाई- व्यंजन के उच्चारण की रीतियों के बारे में वे विस्तार से चर्चा करते हैं। आज भी अभिनेता अपने 'उच्चारण अभ्यास' में स्वर और व्यंजन को सही तरीके से उच्चारित करने का ही प्रयास करते रहते हैं।

### शब्द

भरत ने स्वर तथा व्यंजन के योग से तथा स्वर, संधि, विभक्ति, संज्ञा, क्रिया, उपसर्ग, निपात, तद्धित समास तथा नाम धातु के विषय में बतलाया है। उनका यह उल्लेख शब्द में निहित अर्थ को जानने के उद्देश्य से है। यदि अभिनेता शब्दों के अर्थ को नही जानेगा तो वह कैसे उस शब्द ध्वनि का उच्चारण कर सकेगा।

### पद्य

यह तो तय है कि नाट्यशास्त्र पद्य संवादों की तरफ संकेत करता है। इसीलिए भरत पद्य रचना के संबंध में बताते हैं। शब्द के स्वरूप पर चर्चा के बाद भरत शब्दों के समूह से बनने वाली पद्यरचना- छंद के विषय में बतलाते हैं और उनके विभेदों की चर्चा करते हैं। अध्याय 16-वृत्तविधान में भरत छंदों का नाट्य प्रयोग में तरीका बतलाते हैं और अध्याय-17 में छंद से बनने वाले वृत्त लक्षणों से युक्त काव्य-अलंकार विधान का उल्लेख करते हुए वे काव्य में निहित छत्तीस लक्षण का बताते हैं। ये छत्तीस लक्षण संवाद के व्यवहार को समझने के लिए अत्यंत आवश्यक है। जैसे- भूषण (जब काव्य रचना गुणों और अलंकारों इस प्रकार सजी हो जैसे किसी व्यक्ति के शरीर को सजाया गया हो।), अक्षरसंघात (जब किसी स्लिष्ट अक्षरों से विचित्र अर्थ की अभिव्यक्ति की जाय), शोभा (जब किसी नए और चाहे गये अर्थ को सिद्ध किया जाय अथवा अज्ञात विषय को सिद्ध रूप में बताया जाय), उदाहरण (जब दो समान वाक्यों से किसी एक अर्थ को प्रकट किया जाय), हेतु (जब छोटे वाक्यों का चतुराई से प्रयोग कर चाही गई वस्तु को पा लिया जाय), संशय (जब विचार की अधिकता होने के कारण पूरे

टिप्पणी

अर्थ को जाने बिना ही वाक्य समाप्त हो जाय), दृष्टांत (जब हेतु या फिर उदाहरण देते हुए किसी विषय का मनोरंजक तरीके से समर्थन किया जाय) इत्यादि। पद्यात्मक संवादों के लक्षणों की जानकारी अभिनेता के लिए आवश्यक है तभी वह संवादों में निहित अर्थ को प्रकट कर पाएगा।

आज के परिवेश में यदि हम वाचिक के संदर्भ में भरत के निर्देशों को देखें तो गद्य और पद्य दोनों ही पुकुति हमें नाटकों में दिखाई देती है। ऐसे में यदि गद्य हो तो अभिनेता को गद्य विधान के संदर्भ में जानकारी होनी चाहिए। वाक्य संरचना और उसमें निहित अर्थ को उद्घाटित करने का प्रयास अभिनेता को करना चाहिए।

### अलंकार

पद्य में अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है। अलंकार अर्थात बात को कहने का अलंकरण युक्त तरीका। नाट्यशास्त्र के नाट्यधर्मी अभिनय शैलीगत है जिसे हम 'स्टाइलाइज फॉर्म' कह सकते हैं। ऐसे में संवाद कैसे सरल हो सकते हैं। संवादों की अदायगी में शैलीगत व्यवहार के लिए काव्य-अलंकारों की विशिष्ट भूमिका है। आचार्य भरत ने इनकी संख्या-4 बताई है- उपमा, रूपक, दीपक और यमक। उपमा अलंकार में दो पदार्थों के गुणों अथवा प्रकृति की दिखाई देने वाले वस्तु से तुलना की जाती है। जैसे- तेरा मुख चंद्र के समान है। रूपक अलंकार वह है जिसमें एक वाक्य में अलग-अलग विषयों वाले शब्दों को जोड़ा जाय। जैसे- वहां हंसी से सरोवर, पुष्पों से वृक्ष, मत्त भंवरों से कमल तथा गोष्ठियों से उपवन सदा शोभायुक्त रहते हैं। इसी प्रकार यमक अलंकार- जहाँ शब्दों की बार-बार आवृत्ति हो किंतु हर बार उसका अर्थ भिन्न हो। श्लेष- जिसमें कई अर्थ एक ही पद से जुड़े हों। यह अलंकार केवल पद्य रचना में ही नहीं प्रयुक्त होते बल्कि वाचन शैली का भी निर्धारण करते हैं।

## पाठगत प्रश्न 2.1

1. वाचिक अभिनय से आप क्या समझते हैं?

   ....................................................................................................

2. भाषा पर कैसे अधिकार पाया जा सकता हैं?

   ....................................................................................................

3. नाट्यशास्त्र में भाषा की चर्चा किस अध्याय में हैं?

   ....................................................................................................

4. भरत के अनुसार नाट्य में प्रयुक्त होने वाली चार भाषायें कौन-सी हैं?

   ....................................................................................................

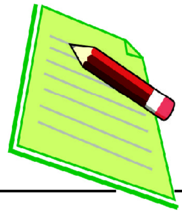

*टिप्पणी*



5. भरत के अनुसार पाठ्य के कितने प्रकार हैं?

.........................................................................................................

6. स्वर क्या है?

.........................................................................................................

7. व्यंजन से क्या तात्पर्य है?

.........................................................................................................

8. शब्द क्या है?

.........................................................................................................

9. आचार्य भरत छंदों की चर्चा किस अध्याय में करते हैं?

.........................................................................................................

10. अलंकार का क्या आशय है?

.........................................................................................................

## 2.2 षडांग परिचयः पाठ्य के गुण

आचार्य भरत पाठ्य के गुण एवं स्वरूप की चर्चा भी आरंभ करते हैं। इनकी संख्या छः है- स्वर, स्थान, वर्ण, काकु, अलंकार तथा अंग। वाचिक अभिनय में प्रवीण होने के लिए इन छः तत्वों को अभिनेता निरंतर प्रशिक्षण से गुजरकर साध सकता है।

### स्वर

पाठ्य स्वर अर्थात नट का वाचन इन्हीं छः स्वरों के अधीन होता है। इन उपकरणों के प्रयोग नाटकीय संवाद अधिक प्रभावी और संप्रेषणीय हो जाता है। स्वरों की संख्या सात है- षडज्, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद। इन स्वरों का प्रयोग रस के अनुसार और अनुकूल परिस्थिति में करना चाहिए। क्रमशः श्रृंगार और हास्य में मध्यम तथा पंचम, करुण में गांधार और निषाद, भयानक तथा वीभत्स में धैवत का प्रयोग किया जाना चाहिए।

### स्थान

इन स्वरों के तीन स्थान हैं- उरस्थल, कण्ठ तथा शीर्ष (मस्तक)। इनके अभ्यास हेतु ये युक्तियाँ अपनाई जा सकती हैं- जब बहुत दूर स्थित किसी व्यक्ति को पुकारा जाता है तब स्वर का उच्चारित स्थान मस्तक, थोड़ी दूर पर खड़े व्यक्ति को कण्ठ और समीप खड़े व्यक्ति को

छाती के स्थान से उच्चारित स्वर से बुलाया जाना चाहिए।

### वर्ण

उच्चारित किये जाने वाले पाठ में चार वर्ण होते हैं- उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा कम्पित। वर्ण से आशय भाषा के सुर गुण अथवा गीतात्मक स्वराघात से है। हास्य और श्रृंगार में स्वरित और उदात्त वर्ण, वीर, रौद्र और अद्भुत रस में उदात्त तथा कंपित, करुण, वात्सल्य और भयानक में अनुदात्त, स्वरित और कंपित स्वर होना चाहिए। तात्पर्य भावों से है। इसके लिए मुख्य रूप से किये जाने वाले अभ्यासों में अभिनेता को अलग-अलग अभिव्यक्ति के साथ बोलने को कहा जा सकता है।

### काकु

पाठ्य का प्राणतत्व काकु होता है क्योंकि इसी के द्वारा स्वर भिन्नता से वाचन में विविधता आती है तथा वाक्य नवीन अर्थ ग्रहण करता है। इसके दो भेद हैं- साकांक्ष और निराकांक्ष। यदि किसी वाक्य के उच्चारण के समय उसका अर्थ पूर्ण रूप से प्रकट नही होता तथा कंठ और वक्ष स्थल से स्वर उत्पन्न होता हो, जो तार स्वर से प्रारंभ होकर मंद स्वर में समाप्त हो जाता हो, उन्हें साकांक्ष काकु कहते हैं। इनमें वर्ण तथा अलंकार अपूर्ण होते हैं। निरांकाक्ष वे कहलाते हैं जिनमें किसी वाक्य के उच्चारण में पूर्ण अर्थ प्रकट होता है तथा मंद्र से तार तक स्वरों की योजना रहती हैं। इनमें वर्ण और अलंकार पूर्ण रूपेण विद्यमान रहते हैं। इसका संबंध मुख्यत: स्वरों के उतार-चढ़ाव अर्थात वोकल टोन से है।

### उच्चारण

अंत में उच्चारण के छ: अंगों की चर्चा मिलती है-विच्छेद, अर्पण, विसर्ग, अनुबंध, दीपन तथा प्रशमन। विराम के कारण विच्छेद, लीला या सौकुमार्य से पूर्ण शब्दावली का पाठ 'अर्पण', वाक्य को पूर्ण करना 'विसर्ग', दो या दो से अधिक पदों के मध्य विच्छेद न करना तथा बिना साँस टूटे कहते जाना 'अनुबंध', जो स्वर तीनों स्थानों से उच्चारित होकर बढ़ता जाए वह 'दीपन' तथा ऊँचे चढ़े हुए स्वरों को धीरे-धीरे नीचे की ओर बिना परिवर्तन के लाना 'प्रशमन' कहलाता है। पाठ्य के इन अलंकारों के प्रयोग से वाचन में विशिष्ट प्रभाव और रमणीयता का उदय होता है। इसके लिए अभिनेताओं को सुधारात्मक (इम्प्रोवाइजेशन) प्रक्रिया से गुजारकर इन छ: अंगों से परिचित कराया जा सकता है।

आचार्य ने भरत विराम के भी विषय में चर्चा की है। वे कहते है कि यह अर्थ के समाप्त होने या फिर परिस्थिति पर निर्भर करता है। ये विराम अर्थों को स्पष्ट करते हैं। वाचिक अभिनय में 'विराम' पर नाट्य निर्देशकों को सदैव ध्यान देना चाहिए क्योंकि अभिनय उच्चारित शब्दों के अर्थ पर निर्भर करता है। इसके लिए वे अलंकारों के साथ हाथों की हलचल (मूवमेंट) भी निर्धारित करते हैं। जैसे- रौद्र और वीर रस में हाथ शस्त्र चलाने में लगे रहते

टिप्पणी

हैं। वीभत्स रस में कोई घुणित वस्तु को देखकर हाथ सिकुडे रहते हैं। ऐसी स्थिति में अलंकार और विराम से ही अर्थ स्पष्ट किया जा सकता है।

पद्य अर्थात टेक्स्ट में जो विराम रखे जाते हैं वे अर्थ के समाप्त होने पर या फिर सांस लेने के लिए रखे जाते हैं। इसलिए अभिनेता को चाहिए कि वो उचित जगह पर विराम लेकर सांस को ले। आवश्यकतानुसार पद्य में रस और भावों के लिए एक से अधिक विराम भी रखे जा सकते हैं। रंगमंच पर अर्थ प्रकट करने के लिए चतुर अभिनेता क्रम में परिवर्तन कर विराम ले सकते हैं।

अभिनेता जिस पाठ का वाचन कर रहा है वह अशुद्ध शब्दों और लक्षणों से हीन नहीं होना चाहिए। निश्चित विराम के अतिरिक्त अन्य जगह पर देर तक रूकना और दीन हीन अवस्था में तेज बोलना अर्थ के विपरीत है। नाट्य प्रयोक्ता या फिर निर्देशकों को पाठ्य संवादों को उचित तरीके से स्वर, कला, ताल और लय से युक्त रखनी चाहिए–ऐसा आचार्य भरत कहते हैं।

## पाठगत प्रश्न 2.2

1. पाठ्य के गुण कौन-कौन से हैं?

.......................................................................................................

2. स्वरों की संख्या कितनी है?

.......................................................................................................

3. स्वर उत्पत्ति के स्थान कौन-कौन से हैं?

.......................................................................................................

4. भरत के अनुसार पाठ में कौन-कौन से वर्ण होते हैं?

.......................................................................................................

5. काकु से क्या तात्पर्य है?

.......................................................................................................

6. काकु भेद क्या है?

.......................................................................................................

7. उच्चारण के कौन-कौन से अंग हैं?

.......................................................................................................

## 2.3 चित्राभिनय के प्रयोग में वाचिक अभिनय

आचार्य भरत ने चित्राभिनय के संदर्भ में भी वाचिक अभिनय का उल्लेख किया है जिसके अंतर्गत वे आकाशभाषित, स्वगत, अपवारित तथा जनान्तिक की चर्चा करते हैं। किसी पात्र से किया जाने वाला संभाषण जो दूरी से हो या किसी पात्र के बिना प्रवेश के हो अथवा परोक्ष रूप में किसी को संबोधित करते हुए कहा गया हो जो समीप न हो 'आकाश भाषित' कहलाता है। वह वचन जो स्वयं से कहा जाय 'स्वगत' तथा जो वचन हृदय में गुप्त रखते हुए कहे जाते हों वे 'आत्मगत' एवं किसी गोपनीय भाव से सम्बद्ध वचनों का संभाषण 'अपवारित' कहलाता है। इसी प्रकार जब अनपेक्षित रूप में समीप स्थित व्यक्ति को कोई बात नही सुनाना हो तो उस दशा में किसी अन्य व्यक्ति से किया जाने वाला संभाषण 'जनान्तिक' कहलाता है। इसके आगे वे इनके प्रयोग की विधि बतलाते हैं। भरत का कहना है कि जो शब्द हड़बड़ाहट, उत्पात, रोष तथा शोकावेग में कहे जाते हैं उन्हें 'पुनरुक्त' कहते हैं। इन दशाओं मे कहे गए शब्द दो या तीन बार दुहराए जाने चाहिए। नाटक में यदि कोई शब्द विकृत अथवा अपूर्ण है तो उन्हें लक्षण के अनुसार आंगिक मुद्राओं तथा चेष्टाओं के द्वारा नही अभिनीत करना चाहिए। स्वप्न की अवस्था में अंगों या हाथों की चेष्टाएं न करके केवल निद्रावस्था में कहे गए वाक्यों द्वारा ही प्रदर्शित करना चाहिए। इस दशा में वाक्यों को मन्द ध्वनि में व्यक्त-अव्यक्त पुनरुक्त वचनों मे पिछली घटना का स्मरण करना चाहिए। वृद्ध व्यक्ति के संभाषण में गद्‌गद् ध्वनि तथा स्खलित अक्षरों की योजना करनी चाहिए। बच्चों के संवादों मे कलकल ध्वनि तथा अपूर्ण शब्द रखे जाने चाहिए। मरण के समय अव्यक्त संवादों की योजना करनी चाहिए जो कि शिथिल, भारी तथा हीन वर्णों वाले हों, गले मे खड़खड़ाहट, बीच-बीच मे हिचकी, हिचकी, श्वासवेग आदि का प्रयोग होना चाहिए।

## 2.4 सामान्य अभिनय के प्रयोग में वाचिक अभिनय

सामान्य अभिनय के संदर्भ में भी वाचिक अभिनयों के भाव तथा रस से युक्त बारह मार्ग बतलाए गए हैं जिन्हें नाटकीय कथावस्तु में संवाद हेतु इस्तेमाल किया जाता है। ये हैं- आलाप (किसी से बोलना), प्रलाप (असंबद्ध तथा निरर्थक वाक्यावलि का प्रयोग), विलाप (शोकपूर्ण अवस्था में उत्पन्न वचनावलि), अनुलाप (एक ही बात को बार-बार दुहराना), संल्लाप (उक्ति-प्रत्युक्ति युक्त संभाषण), अपलाप (पूर्व कथित शब्दावली की अन्य अर्थ में योजना), संदेश (उसे यह कह देना-ऐसे वाक्य), अतिदेश (जो तुमने कहा वह मैने ही कहा-इस भावना से सहमतिसूचक वाक्य), निर्देश (यह मैं कहता हूँ-ऐसे वाक्य), व्यपदेश (किसी बहाने से कही जाने वाली बात), उपदेश (यह ऐसा करो तथा इसे ले लो-ऐसे वाक्य) एवं अपदेश (दूसरे के वचन बतलाकर अपनी बात को कह देना)।

इस प्रकार नाट्यशास्त्र में वाचिक अभिनय के अंतर्गत आचार्य भरत द्वारा बताए गए निर्देश एक अभिनेता के लिए बड़े ही आवश्यक हैं। भले ही वह निर्देश पद्य रचना को केन्द्र में रखकर

टिप्पणी

दिये गए हैं किंतु कई तत्व सभी शैलियों में समान रूप से दिखाई देते हैं। शब्द की प्रतिष्ठा, स्वराघात, वाचन की लय, विराम, अदायगी का तरीका, स्वर, लाउडनेस, प्रोजेक्शन, वोकल टोन, जैसे आधुनिक प्रशिक्षण प्रणाली के शब्द भरत के वाचिक अभिनय के वर्णन में समाए हुए हैं। आज नाट्यशास्त्र को 'स्पीच एंड वायस' के प्रशिक्षण में आधुनिक दृष्टि के साथ देखा जा सकता है।

## पाठगत प्रश्न 2.3

1. आकाशभाषित क्या है?

   ....................................................................................................

2. स्वगत से क्या अभिप्राय है?

   ....................................................................................................

3. अपवारित से क्या तात्पर्य है?

   ....................................................................................................

4. जनान्तिक क्या है?

   ....................................................................................................

5. भाव तथा रस से युक्त वाचिक अभिनय के कितने मार्ग हैं?

   ....................................................................................................

## आपने क्या सीखा

- आचार्य भरत ने अपने ग्रंथ नाट्यशास्त्र में अभिनय के चार भेदों के अंतर्गत वाचिक अभिनय की चर्चा की है।
- नाट्यशास्त्र के 15वें अध्याय में भरत ने वाचिक अभिनय की चर्चा शुरु की है।
- वाचिक अभिनय का संबंध अभिनेता द्वारा बोले जाने वाले संवादों से है।
- वाचिक अभिनय में वे शब्द को ही महत्वपूर्ण मानते हैं। यह अत्यंत आवश्यक है कि अभिनेता को नाटक में प्रयुक्त भाषा के व्याकरण और शुद्ध उच्चारण का भली भाति ज्ञान हो ताकि वह वाक्य के अर्थ को ठीक तरीके से दर्शकों तक संप्रेषित कर सके।
- नाट्य में प्रयोग होने वाले चार प्रकार की भाषा- अतिभाषा (देवगण द्वारा प्रयुक्त),

आर्यभाषा (भूपालों द्वारा प्रयुक्त), जातिभाषा (अनार्य तथा म्लेच्छों द्वारा प्रयुक्त) और जात्यन्तरी (ग्राम में तथा जंगल में रहने वाले पशुओं व पक्षियों द्वारा प्रयुक्त) बतायी है। नाट्य के विविध चरित्रों के लिए किन अवसरों पर संस्कृत व प्राकृत का प्रयोग किया जाय, यह भी भरत विस्तार से बताते हैं।

- पाठ्य के गुण एवं स्वरूप की संख्या छः है- स्वर, स्थान, वर्ण, काकु, अलंकार तथा अंग।
- पाठ्य का प्राणतत्व काकु होता है क्योंकि इसी के द्वारा स्वर भिन्नता से वाचन में विविधता आती है तथा वाक्य नवीन अर्थ ग्रहण करता है।
- आचार्य भरत ने चित्राभिनय के संदर्भ में भी वाचिक अभिनय का उल्लेख किया है जिसके अंतर्गत वे आकाशभाषित, स्वगत, अपवारित तथा जनान्तिक की चर्चा करते हैं।

## पाठांत प्रश्न

1. वाचिक अभिनय में भाषा का क्या महत्व है? आचार्य भारत के अनुसार अगर आप एक संभ्रांत चरित्र का अभिनय कर रहे हैं तो किस भाषा में अभिनय करेंगे?
2. स्वरों का अभिनय में क्या महत्व है?
3. काकु पाठ्य का प्राणतत्व क्यों है? साकांक्ष काकु का वाचिक अभिनय करने का प्रयास कीजिए।
4. चित्राभिनय के संदर्भ में वाचिक अभिनय की क्या भूमिका है? आचार्य भारत के अनुसार 'आकाश भाषित' का अभिनय कीजिए।
5. पाठ में बताए अनुसार शिक्षार्थी 'अनुलाप' का अभिनय करके दिखाएं।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**2.1**

1. वाचिक अभिनय का संबंध अभिनेता द्वारा बोले जाने वाले संवादों व ध्वनियों से है।
2. उच्चारण के सही तरीके के ज्ञान से भाषा पर अधिकार पाया जा सकता है।
3. अध्याय 18 में आचार्य भरत ने भाषा विधान की चर्चा की है।
4. अतिभाषा, आर्यभाषा, जातिभाषा, जात्यन्तरी

5. दो प्रकार- संस्कृत और प्राकृत
6. स्वर वे ध्वनियाँ हैं जो बिना मॉडुलेशन के उत्पादित होते हैं।
7. व्यंजन वे वर्ण हैं जिनका उच्चारण बिना स्वरों के नहीं हो सकता।
8. भरत ने स्वर तथा व्यंजन के योग से तथा स्वर, संधि, विभक्ति, संज्ञा, क्रिया, उपसर्ग, निपात, तद्धित समास तथा नाम धातु के प्रयोग से शब्द का निर्माण बतलाया है।
9. अध्याय-16 वृत्तविधान में भरत ने छंदों के प्रयोग की चर्चा की है।
10. अलंकार का तात्पर्य बात को कहने के अलंकरण युक्त तरीके से है।

**2.2**

1. स्वर, स्थान, वर्ण, काकु, अलंकार और अंग।
2. स्वरों की संख्या सात है- षडज्, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत तथा निषाद।
3. स्वरों के तीन स्थान हैं- उरस्थल, कण्ठ तथा शीर्ष (मस्तक)।
4. पाठ में चार वर्ण होते हैं- उदात्त, अनुदात्त, स्वरित तथा कम्पित। वर्ण से आशय भाषा के सुर गुण अथवा गीतात्मक स्वराघात से है।
5. पाठ्य का प्राणतत्व काकु होता है क्योंकि इसी के द्वारा स्वर भिन्नता से वाचन में विविधता आती है तथा वाक्य नवीन अर्थ ग्रहण करता है।
6. काकु के दो भेद हैं- साकांक्ष और निराकांक्ष।
7. उच्चारण के छः अंगों की चर्चा मिलती है-विच्छेद, अर्पण, विसर्ग, अनुबंध, दीपन तथा प्रशमन।

**2.3**

1. किसी पात्र से किया जाने वाला संभाषण जो दूरी से हो या किसी पात्र के बिना प्रवेश के हो अथवा परोक्ष रूप में किसी को संबोधित करते हुए कहा गया हो जो समीप न हो 'आकाशभाषित' कहलाता है।
2. वह वचन जो स्वयं से कहा जाय।
3. किसी गोपनीय भाव से सम्बद्ध वचनों का संभाषण 'अपवारित' कहलाता है।
4. जब अनपेक्षित रूप में समीप स्थित व्यक्ति को कोई बात नही सुनाना हो तो उस दशा में किसी अन्य व्यक्ति से किया जाने वाला संभाषण 'जनान्तिक' कहलाता है।
5. आलाप, प्रलाप, विलाप, अनुलाप, संल्लाप, अपलाप, संदेश, अतिदेश, निर्देश, व्यपदेश, उपदेश एवं अपदेश।

# 3

# आहार्य अभिनय

आंगिक और वाचिक अभिनय के बाद आचार्य भरत ने आहार्य अभिनय की विस्तार से चर्चा की है। वे इसे नेपथ्य विधान कहते हैं और इस बात पर भी विशेष रूप से बल देते हैं कि अगर नाटक के प्रयोग में सफलता चाहिए तो आहार्य अभिनय पर विशेष बल दिया जाना चाहिए। जैसा कि हम जानते हैं कि नाटक में अलग-अलग अवस्था और अलग-अलग प्रकृति के अभिनेता होते हैं और वे स्वयं से भिन्न चरित्र की भूमिका निभाने का प्रयास करते हैं। ऐसे में आहार्य अभिनय के द्वारा वे अपने शारीरिक क्रियाकलापों और वाणी से चरित्र के भावों को अभिव्यक्त कर सकते हैं। साथ ही वे चरित्र का रूप धारण कर चरित्र की सामाजिक, धार्मिक, भौगोलिक पृष्ठभूमि को भी मंच पर साकार करते हैं।

## अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत आप-

- आहार्य अभिनय के विषय में जानते हैं;
- आहार्य अभिनय की प्रमुख विधियों को जानते हैं;
- पुस्त रचना के विषय में जानते हैं और पुस्त रचना का निर्माण कर पाते हैं;
- अलंकरण की विधियों को जानते हैं तथा उनका निर्माण कर पाते हैं;
- अंग रचना के विषय में जानते हैं तथा संयुक्त वर्णों का प्रयोग कर पाते हैं;
- संजीव के विषय में जानते हैं संजीव का निर्माण कर पाते हैं; और
- नाट्य में आहार्य अभिनय की उपयोगिता समझते हैं।

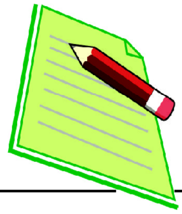

## 3.1 आहार्य अभिनय का सामान्य परिचय

जैसा कि हमने पूर्व में ही चर्चा किया है कि आहार्य अभिनय का तात्पर्य अभिनय की उस विधि से है जिसमें अभिनेता नाट्य मंचन के लिए नेपथ्य में तैयारी करता है। आचार्य भारत ने अपने नाट्य शास्त्र में आंगिक एवं वाचिक अभिनय के उपरांत विस्तार से आहार्य अभिनय की चर्चा की है। वे नाटक की सफलता के लिए इसकी अनिवार्यता स्वीकार करते हैं। उन्होंने आहार्य अभिनय को नेपथ्य कर्म भी कहा है।

नाट्यशास्त्र के तेईसवें अध्याय में 'आहार्य अभिनय' की चर्चा की गई है। इस अभिनय में वेषभूशा, सजावट का कार्य किया जाता है। आहार्य अभिनय का प्रयोग प्रायः नाट्य प्रदर्शन को अलंकृत करने के लिए भी किया जाता है। आचार्य भरत ने आहार्य अभिनय के अंतर्गत नेपथ्य कर्म की चार विधियां बतलाई हैं-

1. **पुस्त रचना**- जिसका तात्पर्य नाट्य में प्रयुक्त किए जाने वाले नमूने की वस्तुओं के निर्माण से है। इसके अंतर्गत वे नाचे सामग्रियों के निर्माण की विधियां बतलाते हैं

2. **अलंकरण**- जिसका तात्पर्य अभिनेता को अलंकृत करना है। इसके अंतर्गत वे चरित्र के अनुरूप अभिनेता द्वारा धारण किए जाने वाले आभूषणों पुष्पमाला तथा वस्त्रों की चर्चा करते हैं

3. **अंग रचना**- जिसमें अभिनेता के शरीर को चित्रित किया जाता है।

4. **संजीव**- अर्थात जीवित प्राणी वर्ग के मंच पर प्रवेश की युक्तियों से है।

यदि आज के संदर्भ में हम आहार्य अभिनय की चर्चा करें तो वर्तमान रंगमंच में बैकस्टेज की पूरी कार्यप्रणाली इसके अंतर्गत आ जाती है आज भी हम देख सकते हैं कि जब भी कोई नाटक मंच पर प्रस्तुत किया जाना होता है तो रिहर्सल की प्रक्रिया में मंच निर्माण, वेशभूषा विन्यास, मेकअप, मास्क आदि की प्रक्रिया से गुजरना होता है तभी कोई नाटक मंचन के लिए तैयार हो पाता है। केवल नाटक को सजाने और संवारने के लिए आहार अभिनय की प्रक्रिया पूरी नहीं की जाती है बल्कि इसका अपना भी एक महत्व होता है आहार्य अभिनय के माध्यम से हमें चरित्र के विषय में देख कर ही जानकारी मिल जाती है यदि अभिज्ञान शाकुंतलम् में राजा दुष्यंत का प्रवेश मंच पर हो तो ऐसे में नाटक में प्रयुक्त होने वाली चीजों का निर्माण का निर्माण पुस्त विधान के अंतर्गत किया जाएगा राजा दुष्यंत चरित्र द्वारा धारण किया जाने वाला अलंकार वेशभूषा अन्य चरित्रों से भिन्न होगी जोकि एक राजा के अनुरूप होगी।

## पाठगत प्रश्न 3.1

1. आहार्य अभिनय से आप क्या समझते हैं?

..............................................................................................

2. आहार्य अभिनय की चर्चा किस अध्याय में हैं?

..............................................................................................

3. नेपथ्य विधि की कौन-कौन सी विधियाँ हैं?

..............................................................................................

4. पुस्त रचना क्या है?

..............................................................................................

5. संजीव क्या हैं?

..............................................................................................

## 3.2 पुस्त रचना

आहार्य अभिनय में सबसे पहले और महत्वपूर्ण होता है-पुस्त। यह एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा रंगमंडप पर दृश्य उपस्थित किया जाता है। संकेत रूपी मॉडल बनाकर नाटक की वस्तुओं को सारूप प्रदर्षित किया जाता है। एक तरीके से यह विधि किसी वस्तु को उसके वास्तविक रूप में मंच पर प्रयोग करने की युक्ति है।

स्पष्ट है कि पुस्त का अर्थ-किसी वस्तु की सांकेतिक रचना। इस पुस्त रचना के अंतर्गत आचार्य भारत में मंच पर नाटक के दौरान प्रयोग किए जाने वाली वस्तुओं जैसे कि पर्वत, यान विमान, ढाल कवच इत्यादि के निर्माण की विधियां बतलाई हैं। निर्माण की इन विधियों को आचार्य भरत ने 3 प्रकारों में बांटा है-

1. **संधिम :** संधिम का अर्थ है बाँधना या फिर जोड़ना। इसके द्वारा वस्तुओं को बाँधकर अथवा आपस में जोड़कर किसी वस्तु का निर्माण किया जाता है। यदि चटाई पास चमड़ा या कपड़े से किसी वस्तु का निर्माण किया जाए तो उसे संधिम समझा जाना चाहिए। नाट्यषास्त्र में इस विधि से बनाए जाने वाले कई उपकरणों का उल्लेख है जैसे- भोजपत्र, वस्त्र, चर्म, लौह तथा बांस की पत्तियों से वस्तुओं को बनाया जा सकता है। इनसे मंच पर प्रासाद, दुर्ग, वाहन, रथ, हाथी, घोड़ा जैसी वस्तुओं को प्रस्तुत किया जा सकता है ऐसा आचार्य भरत कहते हैं।

2. **व्याजिम :** मशीनों के माध्यम से बनाए जाने वाली वस्तुएँ व्याजिम कही गई है। इसके माध्यम से रथ, विमान, यान को रंगमंच पर कृत्रिम गति दी जा सकती है। अभिनवगुप्तपाद की मानें तो ये पदार्थ धागे के माध्यम से आगे पीछे कर गतिशील बनाए जाते थे। एक तरह से पदार्थों में चेष्टा कराके वस्तुओं का इस्तेमाल इस पुस्त विधि से किया जा था।

3. **वेष्टिम :** यह ऐसी पुस्त विधि है जिसमें कपड़े से ढंककर अथवा उसे लपेटकर प्रयोग किया जाता है। वस्तुओं के निर्माण की इन प्रक्रिया से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संस्कृत नाटकों के प्रदर्शन के लिए प्रयोग में आने वाली नाट्य सामग्री का निर्माण कैसे किया जाता रहा होगा। संस्कृत रंगमंच पर इसी विधि से शैल, यान, विमान और हाथी को मंच पर लाने का प्रयोग होता था। इसी तरह से छत्र, मुकुट, इंद्रध्वज और नाटक के विभिन्न चरित्र जैसे राजा, मंत्री आदि के लिए प्रयुक्त काश्ठासन, मुण्डासन और मयूरासन जैसी वस्तुओं का निर्माण किया जाता था। आहार्य अभिनय की इस प्राकृतिक पुस्त रचना से नाट्य प्रयोग को यथार्थवादी रूप देने में अधिक सहायता होती थी।

## पाठगत प्रश्न 3.2

1. पुस्त रचना की कितनी विधियाँ हैं?

.......................................................................................................

2. संधिम पुस्त रचना से क्या अभिप्राय है?

.......................................................................................................

3. व्याजिम पुस्त रचना से क्या अभिप्राय है?

.......................................................................................................

4. वेश्टिम पुस्त रचना से क्या अभिप्राय है?

.......................................................................................................

## 3.3 अलंकार

पुस्त रचना के बाद आचार्य भरत अभिनेताओं द्वारा शरीर पर धारण किए जाने वाले अलंकार की चर्चा करते हैं। इस अलंकार के अंतर्गत वे पुष्पमाला, आभूषण तथा वेष विन्यास की विवेचना करते हैं।

1. **माल्य:** आचार्य भरत कहते हैं कि पुष्प की माला भी पांच प्रकार की होती हैं- वेष्टिम, वितत, संघात्य, ग्रंथिम और प्रलम्बित। वेश्टिम माला में हरी पत्तियों तथा पुष्पों को गूंथा जाता है। वितत में पुष्पों की माला फैली रहती है। संघात्य में पुष्पों के डंठल धागे में बींथकर गूंथे जाते हैं। ग्रंथित में केवल पुष्पों को बींथा जाता है और प्रलंबित माला लंबी और लटकी हुई होती है।

2. **आभूषण :** नाट्य प्रदर्शन के दौरान अभिनेताओं द्वारा पहने जाने वाले आभूषणों को भी आचार्य भरत ने पहनने के तरीकों के आधार पर वर्गीकृत किया है-

    1. **आबेध्य**- वे आभूषण जो शरीर के किसी अंग को बेधकर पहने जाँय। जैसे कान के कुण्ठल और नाक में पहने जाने वाले आभूषण इसी के अंतर्गत होंगे।

    2. **बंधनीय**- शरीर के किसी अंग पर बांधकर पहने जाने वाले आभूषण। जैसे- केयूर, करधनी आदि।

    3. **प्रक्षेप्य**- ऐसे आभूषण जिन्हें उतारा और पहनाया जाय। जैसे-नूपुर, अंगूठी आदि।

    4. **आरोप्य**- वे आभूषण जिन्हें आरोपित किया जाय। जैसे- हेमसूत्र, मणिमाला आदि।

आचार्य भारत इन आभूषणों को वर्गीकृत करने के बाद पुरुष और स्त्रियों के द्वारा उनकी रूचि स्थिति और जाति के अनुसार पहने जाने के विषय में भी बतलाते हैं देवता राजा और स्त्रियों द्वारा शरीर के किन अंगों में कौन-कौन से आभूषण पहने जाने चाहिए इसके विषय में वह विस्तार से चर्चा करते हैं साथ ही वे यह भी बताते हैं कि नाटक प्रदर्शन के दौरान अभिनेता को अधिक भारी आभूषण अथवा अलंकार प्रयोग में नहीं लाने चाहिए क्योंकि इससे प्रदर्शन करते हुए अभिनेता अथवा अभिनेत्री को थकावट हो सकती है, उनके शरीर से पसीना निकलने लगता है और वह मूर्छित भी हो सकते हैं। ऐसे पात्र जो मनुष्य हैं उन्हें भाव और प्रयत्न के अनुसार ही आभूषण धारण करना चाहिए जो कि उनके देश काल के अनुसार हो।

### पुरुषों के अलंकार

इसमें सिर पर चूड़ामणि, कानों में कुण्डल, कंठ में मुक्तावलि, हर्शक तथा सूत्रक, अंगुली में अंगूठी, बाजू के ऊपरी भाग में केयूर और अंगद, वक्षस्थल पर मोतियों की माला, हार और

टिप्पणी

सूत्रक आदि शामिल हैं। इन आभूषणों को देवता या फिर प्रमुख पुरुष पात्रों द्वारा धारण किया जाना चाहिए।

### स्त्रियों के अलंकार

नाट्यशास्त्र में स्त्री पात्रों के लिए प्रयुक्त अलंकारों की भी विस्तृत सूची प्राप्त होती है। जैसे- सिर पर शिखापाष, शिखाव्याल, पिण्डीपत्र, मकरिका, चूड़ामणि, ललाट पर वेणीगुच्छ, तिलक, कानों में कर्णिका, कुण्डल और कर्णफूल, नेत्रों में काजल, ओंठ पर रंग, कण्ठ पर मोतियों की माला, रत्नों की माला और सूत्रक। इस तरह से आचार्य भरत ने स्त्रियों के लिए कई आभूषणों की चर्चा की है। यह सभी आभूषण प्रवृत्ति को देखकर निष्चित किये गए हैं। वे यह भी कहते हैं कि इन आभूषणों का प्रयोग भाव तथा रस को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए।

3. **वेश विन्यासः** चरित्र के अनुरूप वेशभूषा कैसी हो इसके संबंध में आचार्य भरत कहते हैं कि पात्र की वेशभूषा चरित्र की वेशभूषा के अनुरूप रखी जानी चाहिए। इसे वे कई उदाहरणों के साथ भी बतलाते हैं जैसे यक्ष, नाग, अप्सराएं, ऋषि, देवकन्या, गंधर्व, राक्षस, असुर, वानर और मानव स्त्रियों की वेशभूषा, उनका वस्त्र आभूषण, केश विन्यास किस प्रकार का हो, इसकी चर्चा भी आचार्य भरत करते हैं। वेशभूषा की चर्चा करते हुए आचार्य भरत विभिन्न देश काल के अनुसार अवंती, गौड़, आभीर, पूर्वोत्तर तथा दक्षिण प्रदेश की नारियों के वेश की चर्चा करते हैं और यह भी बतलाते हैं कि दुख वियोग जैसी अवस्था में उनका वेशभूषा विन्यास कैसा होना चाहिए।

## पाठगत प्रश्न 3.3

1. अलंकार के अंतर्गत किन-किन चीजों की चर्चा है?

.......................................................................................................

2. पुष्प मालाओं के कितने प्रकारों की चर्चा की गई है?

.......................................................................................................

3. आभूषण धारण करने की कौन-कौन सी विधियाँ है?

.......................................................................................................

टिप्पणी

4. प्रक्षेप्य आभूषण से क्या अभिप्राय है?

..................................................................................................................

## 3.4 अंगरचना

अंगरचना को हम आज की भाषा में रूप सज्जा भी कह सकते हैं। आचार्य भरत कहते हैं कि सबसे पहले निर्देशक को अभिनेताओं के अंगों को उचित रंगों से रंगना चाहिए फिर उन्हें चरित्र की प्रकृति और उनके कार्य के अनुसार वेश धारण करवाना चाहिए यहां आचार्य भरत रंगों के विषय में भी बतलाते हैं वह चार स्वाभाविक रंगो सफेद काला पीला तथा लाल से अभिनेता के शरीर को रंगने का निर्देश देते हैं इसी संबंध में वे संयुक्त वर्ण के प्रयोग की बात भी बतलाते हैं संयुक्त वर्ण से तात्पर्य है ऐसे रंग जो दो रंगों को मिलाकर बनाए जाते हैं इस तरह वे स्वाभाविक और संयुक्त रंगों से अभिनेता को उसकी भूमिका की प्रकृति उम्र देश तथा जाति के अनुसार रंगे जाने की बात कहते हैं उनके अनुसार अंग रचना के माध्यम से ही अभिनेता परकाया प्रवेश करता है जब एक अभिनेता अपनी वेशभूषा और रंगों से अपने शरीर को रंग कर चरित्र के भाव उसके आचार विचार और चेष्टाओं का अनुसरण करता है तो वास्तव में वह वही चरित्र बन जाता है।

### वर्ण (रंग)

आचार्य भरत ने रंगों का बहुत ही वैज्ञानिक वर्णन प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार मुख्य रंग चार हैं-

1. सित (उज्जवल), 2. पीत, 3. नील और 4. रक्त।

इन्हीं चार वर्णों के योग से अन्य रंगों का निर्माण किया जाता था-

सफेद तथा पीले के मिश्रण से पाण्डु

सित तथा नीले के मिश्रण से कपोत

सित तथा लाल के मिश्रण से कमल

पीले तथा नीले के मिश्रण से हरित

नीले तथा लाल के मिश्रण से कशाय

पीले तथा लाल के मिश्रण से गौर

इसी तरह से कई रंगों को मिलाकर अन्य रंग भी बनाए जा सकते हैं। इस विधि को ध्यान में रखकर ही भूमिका के अनुसार अभिनेता के शरीर को रंगा जाना चाहिए।

इस प्रकार वर्ण योजना बतलाकर आचार्य भरत विभिन्न पात्रों के लिए रंग रोगन हेतु वर्णों का नियोजन भी करते हैं। जैसे- राजा के लिए कमल, श्याम या गौर वर्ण, सुखी व्यक्ति हेतु गौर वर्ण, दुराचारी व्यक्ति के लिए श्याम, तपस्वियों के लिए असित। वे यह भी कहते हैं कि पात्र की मनोदशा को ध्यान में रखकर ही उसकी अंगरचना और वर्ण का निर्धारण करना चाहिए।

## श्मश्रु कर्म

पात्रों के शरीर को रंगने के बाद उनके देषकाल, उम्र और अवस्था के अनुरूप ही श्मश्रु कर्म भी रखने चाहिए। वे इनके चार स्वरूप का भी वर्णन करते हैं-

1. **शुद्धः** बनी हुई या साफ श्मश्रु। इसमें दाढ़ी पर केष नहीं होतें, वह साफ रहती है। ब्रम्हचारी, वानप्रस्थी, मन्त्री, पुरोहित आदि चरित्रों के लिए इस प्रकार के श्मश्रु का प्रयेग किया जाना चाहिए।

2. **विचित्र :** अच्छी तरह से बनी संवरी श्मश्रु। इस प्रकार के श्मश्रु को क्षुरे अर्थात उस्तरे से उचित आकार में लाकर आकर्षक बनाया जाता है। राजा, राजकुमार, राजपुरुष, श्रृंगारिक प्रवृत्ति के पात्र, आदि के लिए इसी प्रकार के श्मश्रु का विधान किया जाना चाहिए।

3. **श्याम :** कुछ उगी हुई श्मश्रु। प्रतिज्ञा पर अटल, प्रतिषोध लेने के लिए प्रवृत्त पात्रों, तपस्वी और व्रत धारण करने वाले पात्रों के लिए श्याम श्मश्रु रखा जाना चाहिए।

4. **रोमश :** घनी उगी हुई श्मश्रु। ऋषि, तपस्वी तथा दीर्घव्रतधारी पात्रों के लिए रोमष श्मश्रु का प्रयोग किया जाना चाहिए।

## वेश

विभिन्न पात्रों का अपने परिस्थिति अनुरूप वेश होता है। आचार्य भरत ने इसे तीन प्रमुख प्रकारों में बांटा है-(1) शुद्ध, (2) विचित्र, तथा (1) मलिन। किसी मंदिर में जाने, मंगल कार्यों के समय, किसी विशेश तिथि में, विवाह के समय में स्त्रियों और पुरुशों का वेश 'शुद्ध' होना चाहिए। उच्च कुलीन पात्रों के लिए भी इसी वर्ग का वेश होना चाहिए। 'विचित्र' वेश उन्हें धारण करना चाहिए जो देव, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग, राक्षस, राजा तथा कामुक प्रवृत्ति के पात्र हों। इसी प्रकार थके हुए पात्र, पथिक और विपत्तियों में घिरे हुए पात्र का वेश 'मलिन' होता है।

### मुकुट

इसी किसी क्रम में वह देवता और राजा के द्वारा पहने जाने वाले मुकुट के तीन प्रकार की भी चर्चा करते हैं- पार्श्वागत, मस्तकि और किरीट। विभिन्न पात्रों के केश विन्यास के बारे में भी आचार्य भरत अंगरचना के अंतर्गत बड़ी ही सूक्ष्मता के साथ वर्णन करते हैं।

### संजीव

संजीव का तात्पर्य रंगमंच पर प्रवेश करने वाले पशु प्राणी से है। आचार्य भरत ने संजीव के अंतर्गत इन पशु प्राणियों के मंच पर उपस्थिति का विधान बतलाया है इसके लिए उन्होंने संजीव के तीन प्रकार बतलाए- चतुष्पद, द्विपाद और अपाद। छोटे और सरल प्राणियों को तो मंच पर लाया जा सकता है लेकिन विशाल हिंसक पशुओं जैसे- शेर, बाघ और अपद में सर्प को मंच पर नहीं लाया जा सकता। ऐसे में कृत्रिम रूप में उन्हें मंच पर लाया जा सकता है।

### पटी घटी की रचना

आचार्य भरत बतलाते हैं कि संजीव के अंतर्गत पटी घटी का भी प्रयोग किया जा सकता है। यह एक प्रकार का आवरण सा होता है। इसे धारण कर व उस प्राणी की चेश्टा का अनुसरण कर अभिनेता किसी प्राणी की रूप रचना को प्रदर्शित कर सकता है। वे इस पटी घटी को बनाए जाने की विधि की भी चर्चा करते हैं।

## 3.5 नाट्य में आहार्य अभिनय का महत्व

अभिनेता नेपथ्य से ही विभिन्न पात्रों की प्रकृति और शोक आदि अवस्थाओं के अनुसार वेशभूशा और रंग रोगन कर मंच पर उपस्थित होता है और जब वह अपने आंगिक और वाचिक अभिनय के साथ प्रदर्शन करता है तो दर्शकों को चरित्र का रूप दिखाई देता है। अत: नाटक की प्रस्तुति में आहार्य अभिनय का विशिष्ट योगदान होता है। इसी अभिनय भेद से अभिनेता वास्तव में परकाया प्रवेश करता है। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसे आत्मा एक देह को छोड़कर दूसरे देह में प्रवेश करता है। नेपथ्य में आहार्य अभिनय के साथ ही वह अपने व्यक्तिगत भावों को छोड़कर पात्र के भाव को ग्रहण करने में सक्षम हो पाता है। यह एक श्रमसाध्य कार्य है।

## पाठगत प्रश्न 9.4

1. वर्ण के कितने प्रकार है?

.....................................................................................................................

टिप्पणी



2. श्मश्रु कर्म के कितने प्रकार है?

..............................................................................................................

3. वेश के तीन प्रकार कौन-कौन से है?

..............................................................................................................

4. मुकुट के प्रकार बतलाइए है?

..............................................................................................................

5. पटी घटी क्या है?

..............................................................................................................

## आपने क्या सीखा

- नाट्यशास्त्र के तेईसवें अध्याय में 'आहार्य अभिनय' की चर्चा की गई है। इस अभिनय में वेषभूशा, सजावट का कार्य किया जाता है। आहार्य अभिनय का प्रयोग प्रायः नाट्य प्रदर्शन को अलंकृत करने के लिए भी किया जाता है।
- आचार्य भरत ने आहार्य अभिनय के अंतर्गत नेपथ्य कर्म की चार विधियां बतलाई हैं- पुस्त, अलंकार, अंगरचना और संजीव।
- पुस्त का अर्थ- किसी वस्तु की सांकेतिक रचना। इस पुस्त रचना के अंतर्गत आचार्य भारत में मंच पर नाटक के दौरान प्रयोग किए जाने वाली वस्तुओं जैसे कि पर्वत, यान विमान, ढाल कवच इत्यादि के निर्माण की विधियां बतलाई हैं।
- आचार्य भरत अभिनेताओं द्वारा शरीर पर धारण किए जाने वाले अलंकार की चर्चा करते हैं। इस अलंकार के अंतर्गत वे पुष्पमाला, आभूषण तथा वेष विन्यास की विवेचना करते हैं।
- ऐसे पात्र जो मनुष्य हैं उन्हें भाव और प्रयत्न के अनुसार ही आभूषण धारण करना चाहिए जो कि उनके देश काल के अनुसार हो।
- पात्र की वेशभूषा चरित्र की वेशभूषा के अनुरूप रखी जानी चाहिए। इसे वे कई उदाहरणों के साथ भी बतलाते हैं जैसे यक्ष, नाग, अप्सराएं, ऋषि, देवकन्या, गंधर्व, राक्षस, असुर, वानर और मानव स्त्रियों की वेशभूषा, उनका वस्त्र आभूषण, केश

टिप्पणी

विन्यास किस प्रकार का हो, इसकी चर्चा भी आचार्य भरत करते हैं।

- निर्देशक को अभिनेताओं के अंगों को उचित रंगों से रंगा रंग ना चाहिए फिर उन्हें चरित्र की प्रकृति और उनके कार्य के अनुसार वेश धारण करवाना चाहिए यहां आचार्य भरत रंगों के विषय में भी बतलाते हैं वह चार स्वाभाविक रंगो सफेद काला पीला तथा लाल से अभिनेता के शरीर को रंगने का निर्देश देते हैं
- विभिन्न पात्रों का अपने परिस्थिति अनुरूप वेश होता है। आचार्य भरत ने इसे तीन प्रमुख प्रकारों में बांटा है-(1) शुद्ध, (2) विचित्र, तथा (1) मलिन।
- संजीव का तात्पर्य रंगमंच पर प्रवेश करने वाले पशु प्राणी से आचार्य भरत ने संजीव के अंतर्गत इन पशु प्राणियों के मंच पर उपस्थिति का विधान बतलाया है।

## पाठांत प्रश्न

1. पुस्त रचना से क्या अभिप्राय है? शिक्षार्थी के पास पुस्त रचना के अनुसार उपलब्ध किसी भी सामग्री का प्रयोग कर पुस्त रचना के अनेक प्रकारों में से किसी एक का चयन कर पुस्त रचना करके दिखाएं।
2. अलंकार के विषय में बतलाइये। शिक्षार्थी अपने आसपास के किन्हीं फूलों का चयन कर वेश्टिम माला का या अन्य किसी माला का निर्माण करके दिखाएं।
3. अंगरचना के बारे में बतलाइये। संयुक्त वर्णों का प्रयोग करते हुए शिक्षार्थी भूमिका के अनुरूप रंगों का प्रयोग करके दिखाएं।
4. संजीव क्या है? अपने पास उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग करके किसी एक संजीव का निर्माण करके दिखाएं।

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**3.1**

1. इस अभिनय में वेषभूशा, सजावट का कार्य किया जाता है। आहार्य अभिनय का प्रयोग प्रायः नाट्य प्रदर्शन को अलंकृत करने के लिए भी किया जाता है।
2. नाट्यषास्त्र के तेईसवें अध्याय में 'आहार्य अभिनय' की चर्चा की गई है।
3. नेपथ्य की चार विधियां है-पुस्त रचना, अलंकरण, अंगरचना और संजीव।

4. पुस्त का अर्थ- किसी वस्तु की सांकेतिक रचना। इस पुस्त रचना के अंतर्गत आचार्य भारत में मंच पर नाटक के दौरान प्रयोग किए जाने वाली वस्तुओं जैसे कि पर्वत, यान विमान, ढाल कवच इत्यादि के निर्माण की विधियां बतलाई हैं।

5. संजीव का अभिप्रायजीवित प्राणी वर्ग के मंच पर प्रवेश की युक्तियों से है।

**3.2**

1. पुस्त रचना की तीन विधियाँ हैं-संधिम, व्याजिम और वेश्टिम।

2. संधिम का अर्थ है बाँधना या फिर जोड़ना। इसके द्वारा वस्तुओं को बाँधकर अथवा आपस में जोड़कर किसी वस्तु का निर्माण किया जाता है।

3. मशीनों के माध्यम से बनाए जाने वाली वस्तुएँ व्याजिम कही गई है। इसके माध्यम से रथ, विमान, यान को रंगमंच पर कृत्रिम गति दी जा सकती है।

4. यह ऐसी पुस्त विधि है जिसमें कपडेઽ से ढंककर अथवा उसे लपेटकर प्रयोग किया जाता है।

**3.3**

1. इस अलंकार के अंतर्गत वे पुष्पमाला, आभूषण तथा वेष विन्यास की विवेचना की गई है।

2. वेष्टिम, वितत, संघात्य, ग्रंथिम और प्रलम्बित।

3. आबेध्य, बंधनीय, प्रक्षेप्य और आरोप्य

4. ऐसे आभूषण जिन्हें उतारा और पहनाया जाय। जैसे-नूपुर, अंगूठी आदि।

**3.4**

1. सित (उज्जवल), पीत, नील और रक्त।

2. शुद्ध, श्याम, विचित्र और रोमश

3. शुद्ध, विचित्र, तथा मलिन।

4. पार्श्वागत, मस्तकि और किरीट

5. यह एक प्रकार का आवरण सा होता है जिसे धारण कर व उस प्राणी की चेष्टा का अनुसरण कर अभिनेता उस प्राणी की रूप रचना को प्रदर्शित कर सकता है।

# 4

# सात्विक अभिनय

आचार्य भरत ने आंगिक, वाचिक तथा आहार्य अभिनय की चर्चा करने के बाद सात्विक अभिनय को सबसे महत्वपूर्ण बतलाया है। यह अभिनय की वह चेतना है जिसके बिना अभिनय प्राय: निष्प्राण होता है। सामान्य अभिनय की चर्चा करते हुए उन्होने कहा है कि सामान्य अभिनय मे 'सत्व' पर अधिक बल देना चाहिए क्योकि सम्पूर्ण नाट्य प्रदर्शन में 'सत्व' की मौलिक महत्ता है। नाट्य लोकधर्मी है और उसमें लोकचरित्रों का अनुकरण होता है। इसलिए सत्व का प्रयोग बहुत ही आवश्यक है। सत्व के आधार पर ही भरत ने अभिनय को श्रेष्ठ, मध्यम और अधम श्रेणी में बांटा है। जब अभिनय में सात्विक अभिनय की प्रबलता होती है तो वह अभिनय श्रेष्ठ कहा जाता है। यदि सात्विक अभिनय सामान्य हो तो अभिनय 'मध्यम' और जब सात्विक भाव निम्न हों तो अभिनय अधम कहा जाता है। ऐसे में हम अभिनय में सात्विक अभिनय को प्रमुख कह सकते हैं। यही अभिनय दर्शकों में रस की उत्पत्ति को नियंत्रित करता है।

इस अध्याय में हम सात्विक अभिनय के बारे में चर्चा करेंगे। आंगिक, वाचिक, आहार्य के उपरांत सात्विक अभिनय की क्या उपयोगिता है। यह हमें जानने की अत्यंत आवश्यकता है। सात्विक भाव कौन-कौन से हैं और किस प्रकार उन्हें आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में व्याख्यायित किया है।

## अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत आप-

- सात्विक अभिनय के विषय में जानते हैं;
- रस के विषय में जानते हैं और तदनुरूप सात्विक अभिनय कर पाते हैं;

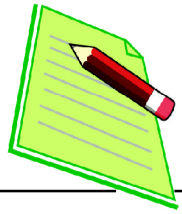



- भाव के विषय में जानते हैं; और
- अभिनय में सत्व के महत्व को जानते हैं।

## 4.1 सात्विक अभिनय

सात्विक शब्द 'सत्व' से मिलकर बना है जिसका अर्थ है- 'सतोभाव' अर्थात होने का भाव। इस प्रकार 'सात्विक भाव' का तात्पर्य उन भावों से है जो नट के अंत:प्रेरणा से सहज और सरल रूप में स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होते हैं। आचार्य भरत ने सात्विक भावों की चर्चा सातवें अध्याय मे भावों का वर्णन करते हुए अनुभाव के अंतर्गत की है। भाव की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं- ये भाव भावन कराने के अनुसार इस संज्ञा से जाने जाते हैं। और ये भाव किसका भावन कराते हैं? ये शब्दों (वाणी), शरीर के अवयवों तथा सात्विक भावों के द्वारा दृश्य काव्य के अभिप्रायों का भावन कराते हैं। भावित (भाव कराना), वासित (वास कराना) और कृत (किया जाना) भी इसी अर्थ को प्रकट करने वाले हैं। लौकिक व्यवहार मे भी ये एक-दूसरे की सुगंध से या रस से भावित हैं, इत्यादि प्रयोग होते देखे जा सकते हैं। यहाँ 'भावन' का अर्थ है व्यापना अर्थात होना। इस भावन से ही दर्शकों मे रस का संचार होता है। वाणी के वर्णनात्मकरूप, आंगिक क्रिया, आत्मा के अंतर्भाव और सात्विक अभिनय के बाह्य क्रिया के द्वारा काव्यार्थ रस को प्राप्त करता है।

इस प्रकार सात्विक अभिनय का अस्तित्व होने के भाव से है। इसे हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि यदि अभिनेता रोने का अभिनय कर रहा है किंतु रोते समय उसकी आँखों से आँसू नहीं बहते, उसकी वाणी में सिसकने के गुण नहीं तो ऐसे में दर्शक में रोने के भाव नहीं जगेंगे और ऐसा अभिनय सात्विक नहीं होगा। किंतु इसी के विपरीत यदि अभिनेता रोते समय अपने मन से उस भाव को अनुभव कर रोता है तो निश्चय ही उसकी आँख से आँसू बहेंगे, वाणी में सिसकियाँ होंगी और दर्शक की आँखें भी भर आएंगी।

## 4.2 रस

नाट्य कला विवेचन में रस का महत्वपूर्ण योगदान है। आचार्य भरत ने नाट्य प्रदर्शन में नाटक के जिन तत्वों की चर्चा की है उन सब का एकमात्र लक्ष्य रस की निष्पत्ति कराना ही है। वाचिक अभिनय के द्वारा रस का बोध होता है और आंगिक तथा आहार्य अभिनय वाक्य के अर्थ की ही अभिव्यक्ति करते हैं। आचार्य भरत ने नाट्य प्रदर्शन के संदर्भ में ही रस की चर्चा की है। वह रस की स्थापना करने वाले आचार्य माने जाते हैं। लेकिन ऐसा नहीं है आचार्य भरत के पूर्व भी कई आचार्यों की कारिकाओं के संबंध में उन्होंने स्वयं चर्चा की है। इस प्रकार यह कहना कि आचार्य भारत ने ही रस सिद्धांत की स्थापना की है यह पूर्णरूपेण सत्य नहीं है। आचार्य भरत के पूर्व भी रस सिद्धांत चर्चा में था किंतु सत्य यह है कि आचार्य भरत ने नाट्य के संदर्भ में रस सिद्धांत की व्याख्या की है।

टिप्पणी

## रस क्या है?

रस के आदि प्रणेता और व्याख्याता भरत ही माने जाते हैं। उन्होंने रस का विश्लेषण नाटक के संबंध में किया है। यह तो सत्य है कि रस का प्रेरणास्रोत वेद और अन्य दूसरे प्राचीन साहित्य रहे होंगे। यह भी उल्लेख मिलता है कि अथर्ववेद से रस तत्व को ब्रह्मा द्वारा नाट्य वेद की रचना में प्रयुक्त किया गया है। रस आनंद का स्वरूप है ऐसा विवरण उपनिषदों में भी मिलता है। आचार्य अभिनव गुप्त की माने तो रस रूप में आनंद में ज्ञान स्वरूप आत्मा का आस्वादन होता है। आत्मा आनंद रूप है और रस भी आस्वाद्य होने के कारण आनंद स्वरूप है। इस प्रकार किसी रचना को देखने, सुनने से जिस आनंद की अनुभूति होती है उसे रस कहा जा सकता है। अगर नाट्य के संदर्भ में बात करें तो रंगमंच में प्रदर्शित किए जाने वाले दृश्य काव्य को देखकर सामाजिक के हृदय में जिस आनंद की अनुभूति होती है वही रस है।

## रस निष्पत्ति

आचार्य भरत ने अध्याय में रस निष्पत्ति के विषय में बतलाया है। उनके अनुसार विभाव अनुभाव और संचारी भाव के योग से रस की निष्पत्ति होती है। वे स्वयं लिखते हैं- **विभावानुभाव संचारी संयोगाद्र रसनिष्पत्तिः।**

आचार्य भारत ने रस की तुलना विभिन्न प्रकार के व्यंजनों के स्वाद से की है। जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों का भोग करने वाला व्यक्ति रस का आस्वादन करता है उसी प्रकार विभाव और विभिन्न प्रकार के संचारी भावों तथा अनुभावों से जोड़कर स्थायी भावों को सहृदय दर्शक मन से आस्वादन करते हैं। यह आस्वाद ही नाट्य रस है।

## रस के प्रकार

आचार्य भरत ने आठ रसों को स्वीकार किया है। उन्होंने मूल रूप से चार ही रस माने हैं बाकी चार को उन्हीं से उपजा माना है। श्रृंगार से हास्य, वीर से अद्भुत, रौद्र से करुण और वीभत्स से भयानक। इस मान्यता से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भरत से पूर्व केवल चार ही रस अस्तित्व में थे बाद में चार अन्य ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित की थी।

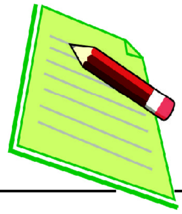

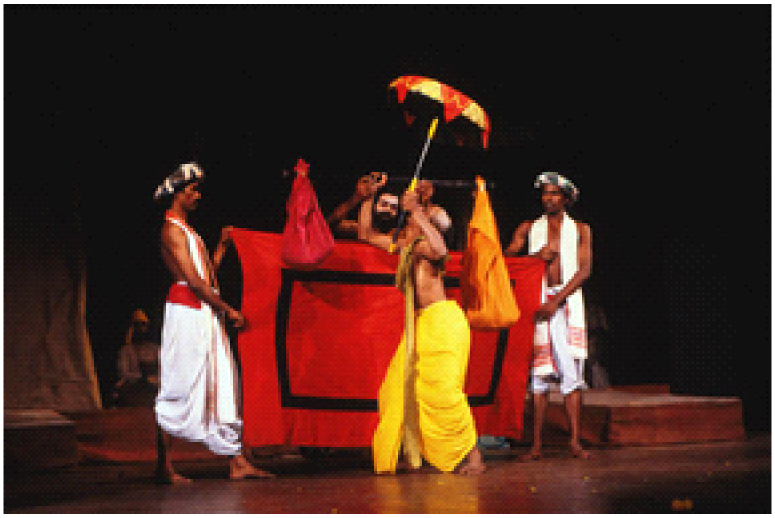

### श्रृंगार

श्रृंगार रस का उद्‌भव रति नामक स्थाई भाव से होता है। यह विभाव अनुभाव और संचारी भावों से उत्पन्न होता है। उत्तम स्वभाव के अनुरक्त युवा और युवतियों का रति भाव आस्वाद योग्य होता है। सीता राम जैसे उत्तम प्रकृति के चरित्रों के अनुकार्य सामाजिक के ह्रदय में भी आस्वाद योग्य होते है क्योंकि अनुकार्य और परीक्षक दोनों के सुख-दु:खात्मक भावों के साध ारणीकरण के द्वारा तादात्मय में की प्रतीति होती है यह तादात्मय में प्रतीत ही रस के द्वार को खोल देता है संयोग और वियोग श्रृंगार रस की दो अवस्थाएं हैं। संयोग श्रृंगार में सुंदर ऋतु, माल्य, अनुलेपन, अलंकार, प्रिय विषय, भव्य भवन, रमणीय उप वन, गमन,जल क्रीड़ा और अन्य लीला आदि विभागों से यह उत्पन्न होता है वही प्रिय से अलग होने पर वियोग श्रृंगार की अवस्था होती है इस प्रकार प्रिय और प्रियतमा दोनों के मिलन पर संयोग और दोनों के बिछड़ने पर वियोग श्रृंगार रस की उत्पत्ति होती है।

### हास्य

हास्य रस हास स्थायी भाव से उत्पन्न होता है। किसी पात्र के विकृत वेश, अलंकार, निर्लज्जता, लालचीपन, असंगत भाषण और अंगों के विकृत रूप विवाह आदि के प्रदर्शन के द्वारा यह उत्पन्न होता है संस्कृत नाटकों में चरित्र विदूषक का प्रयोग इस रस को लक्ष्य करके किया जाना चाहिए, ऐसा आचार्य भरत नाट्यशास्त्र में उल्लेख करते हैं।

### करुण रस

शोक नामक स्थाई भाव से करुण रस की उत्पत्ति होती है। यदि श्राप के प्रभाव से प्रियजन से वियोग हो जाए, बंधन, देश निर्वासन, अग्नि में जलकर मरना अथवा विपत्ति जैसे विभावों

टिप्पणी

से यह करुण रस उत्पन्न होता है। करुण रस के उत्पन्न होने पर आंख से आंसू का आना, सुख में दुखी होना, मुख रंग का उड़ जाना, अंको में शिथिलता आना, लंबी सांसे भरना और स्मृति का खो जाना जैसे कई अनुभावों से इसका अभिनय होता है।

### रौद्र रस

राक्षस, दानव और रौद्र प्रकृति के मनुष्यों के क्रोध रूपी स्थाई भाव से रौद्र रस की उत्पत्ति होती है। यह क्रोध भाषण, चकोर वाणी, ईर्ष्या आदि उद्दीपन विभागों से उत्पन्न होता है। इसमें ताड़ना, शस्त्र का प्रयोग और खून का बहना जैसे कार्य विशेष रूप से दिखाई देते हैं।

### वीर रस

उत्साह नामक स्थाई भाव से वीर रस की उत्पत्ति होती है। स्थिरता, धैर्य, शूरवीर का त्याग और निपुणता आदि अनुभवों से इसका अभिनय किया जाता है। दान धर्म और युद्ध में वीरता के प्रदर्शन के आधार पर इसके तीन भेद होते हैं। दानवीर धर्मवीर और युद्धवीर।

### भयानक रस

भय नामक स्थाई भाव से भयानक रस की उत्पत्ति होती है। यह विकृत शब्द पिशाच आदि के देखने से भय, उद्योग, जंगल, अपने प्रिय व्यक्तियों के वध यापन बंधन देखने से या सुनने से उत्पन्न होता है। हाथ पैर का कांपना आंखों में चंचलता शरीर का रोमांचित हो जाना, मुख का फीका पड़ जाना और स्वर्वेद जैसे अनुभवों से इसका अभिनय होता है।

### वीभत्स रस

जुगुप्सा नाम के स्थाई भाव से वीभक्त रस की उत्पत्ति होती है। किसी कुरूप, अप्रिय अपवित्र और अनिष्ट वस्तु को देखने या सुनने जैसे विभावों से यह उत्पन्न होता है। सब अंगों को सिकोड़ना जैसे अनुभवों से इसका अभिनय किया जाता है। इसके आधार में घृणा और जुगुटसा का होना आवश्यक है।

### अद्भुत रस

आश्चर्य या विस्मय नाम के स्थाई भाव से अद्भुत रस की उत्पत्ति होती है। किसी दिव्य जनों के दर्शन, इच्छित मनोरथ के प्राप्त होने, मनोरम उपवन में जाने अथवा देवकुल में प्रवेश करने, विमान, माया इंद्रजाल की संभावना जैसे विभावों से यह रस उत्पन्न होता है। किसी चमत्कृत कर देने वाले दृश्य अथवा कार्य के देखने से अद्भुत रस का आनंद मिलता है।

## पाठगत प्रश्न 4.1

1. सात्विक से आप क्या समझते हैं?

.................................................................................................................

2. रस क्या है?

.................................................................................................................

3. आचार्य भरत ने कितने रस की चर्चा की है?

.................................................................................................................

4. रससूत्र क्या है?

.................................................................................................................

5. भाव क्या हैं?

.................................................................................................................

6. मूलतः चार रस कौन-कौन से हैं?

.................................................................................................................

7. संयोग शृंगार क्या है?

.................................................................................................................

8. हास्य रस से क्या अभिप्राय है?

.................................................................................................................

9. वीर रस क्या है?

.................................................................................................................

10. अद्भुत रस क्या है?

.................................................................................................................

टिप्पणी

## 4.3 भाव

रस की उत्पत्ति के लिए भाव महत्वपूर्ण होते हैं बिना अभाव के रस की उत्पत्ति नहीं हो सकती और बिना रस के भावों का भी कोई अस्तित्व नहीं होता है। हृदय में उठने वाली अनुभूतियों, संवेगों और नाना प्रकार की मनोदशा को भाव कहते हैं। आचार्य भरत ने भावों की संख्या चार बताई है- 1. स्थायी भाव, 2. विभाव, 3. अनुभाव और 4. संचारी भाव।

### स्थायी भाव

जब सहृदय दर्शक नाट्य प्रदर्शन को देखने के लिए नाट्य मंडप में प्रवेश करता है तो उसके हृदय में कुछ भाव स्थाई रूप से निवास करते हैं। इन भावों को ही स्थाई भाव कहा गया है। स्थाई भाव की संख्या 9 मानी गई है। प्रत्येक रस के लिए एक स्थाई भाव का नियोजन किया गया है।

जैसे-

| रस | स्थायी भाव |
|---|---|
| श्रृंगार | रति |
| हास्य | हास |
| करुण | शोक |
| वीर | उत्साह |
| रौद्र | क्रोध |
| भयानक | भय |
| वीभत्स | जुगुप्सा |
| अद्‌भुत | विस्मय |

ये स्थायी भाव रस उत्पत्ति के लिए बहुत ही आवश्यक होते हैं।

### विभाव

विभाव का तात्पर्य उन भावों से है जिन्हें देखकर अथवा अनुभव कर स्थाई भाव जागृत होते हैं। इनके दो भेद बतलाए गए- आलंबन और उद्दीपन। आलंबन वह है जिसके लिए स्थाई भाव उत्पन्न होता है और उद्दीपन का तात्पर्य उन भावों से है जिन से स्थाई भाव की उत्पत्ति को बढ़ावा मिलता है। इसी तरह आलंबन के भी दो भेद बतलाए गए हैं- आश्रय और विषय। आश्रय वह है जब व्यक्ति के मन में भाव जागृत होते हैं और विषय वह है जिसके लिए मन में भाव जागृत होते हैं। इस तरह इस भाव का तात्पर्य उन कारणों से है जिनसे मन में स्थाई भाव पैदा होता है।

### अनुभाव

वे भाव जिनके द्वारा रति आदि भावों का अनुभावन होता है वह अनुभाव कहलाते हैं। अनुभाव एक तरह से मन में स्थित आंतरिक भावों की बाह्य अभिव्यक्ति की तरह होते हैं। जैसे क्रोध में नसों का फूल जाना या आंखों का लाल हो जाना। अनुभाव के मुख्य रूप से चार प्रकार स्वीकार किए गए- 1. कायिक, 2. वाचिक, 3. आहार्य, 4. सात्विक।

### कायिक अनुभाव

शरीर की क्रियाओं से संबंधित अनुभाव।

### वाचिक अनुभाव

वाणी आदि से अभिव्यक्त अनुभाव।

### आहार्य अनुभाव

आहार्य आदि से अभिव्यक्त अनुभाव।

### सात्विक अनुभाव

सत्व से की गई कायिक चेष्टाएँ सात्विक अनुभाव की श्रेणी में आती हैं। ये इस प्रकार हैं-

मन की एकाग्रता से जुड़े इन सात्विक भावों की संख्या भरत ने आठ बतलाई है- स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु तथा प्रलय। क्रोध, भय, हर्ष, लज्जा, दु:ख, श्रम आदि के कारण आंगिक संचालन का जड़ हो जाना 'स्तम्भ' तथा शीत, भय, क्रोध, हर्ष, स्पर्श, बुढ़ापा तथा रोग से शरीर का कांपना 'वेपथु' है। इसी तरह क्रोध, भय, व्यायाम की स्थिति मे रोम पर जल बिंदु का निकल आना 'स्वेद' कहा गया। आनंद, क्रोध, आँखों मे धुआँ लगने, जम्हाई, भय, शोक मे आँखों मे पानी आलना 'अश्रु' तथा शीत, भय, हर्ष, क्रोध, रोग अरिादि से शरीर के रोम का खड़ा हो जाना 'रोमांच' कहा जाता है। शीत, भय, क्रोध, थकावट, रोग, क्लेश तथा ताप से चेहरे का रंग बदल जाना 'वैवर्ण्य' एवं भय, क्रोध, हर्ष, बुढ़ापा, गले के सूखने, रोग

टिप्पणी

तथा मद से वाणी का खंडित हो जाना 'स्वर-भंग' कहलाता है। श्रम, मूर्च्छा, मद, निद्रा, चोट तथा मोह मे चेष्टाहीन हो जाना 'प्रलय' बताया गया है। इन सात्विक भावों के प्रयोग की विधि भी भरत आगे बतलाते हैं।

### संचारी भाव

संचारी भाव का तात्पर्य उन भावों से है जो हृदय में पानी के बुलबुले के समान उठते और खत्म होते रहते हैं। एक तरह से यह भाव तात्कालिक रूप से बनते हैं और मिटते रहते हैं। इनकी संख्या 33 मानी गई है- निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, देन्य, चिंता, मोह, स्मृति, घृति, ब्रीडा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विबोध, अमर्ष, अविहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, वितर्क।

## 4.5 नाट्य में सात्विक अभिनय का महत्व

सात्विक अभिनय का संबंध अनुभाविक क्रिया से है अर्थात वे क्रियाएँ जो भाव का अनुसरण करें। इसके अंतर्गत वाचिक, आंगिक और आहार्य की क्रियाएँ निहित हैं और यहीं भाव को अनुभूति योग्य बनाती हैं। इसी के आधार पर अनुभाव के चार प्रकार माने गए हैं- सात्विक, कायिक, मानसिक और आहार्य। भरत मानते हैं कि 'सत्व' का संबंध मन से है और ये मन की एकाग्रता से ही उत्पन्न होते हैं। रोमांच, अश्रु और वैवर्ण्य जैसे सात्विक भावों को का अनुकरण बिना मन के नही किया जा सकता। नाटक मे लोकस्वभाव के अनुरूप ही 'सत्व' अपेक्षित है। आगे वे इसी संदर्भ मे कहते हैं कि नाट्य प्रयोग के समय नाट्यधर्म मे प्रवृत्त सुख दु:ख के भावों को इस प्रकार सात्विक भावों से उत्पन्न होने वाला बतलाना चाहिए कि वे यथार्थ स्वरूप वाले प्रतीत होने लगे। इस दु:ख भाव को जो कभी दु:खी न हुआ हो ऐसा सुखी प्रयोक्ता कैसे अभिनीत कर सकता है? इस संबंध मे यही 'सत्व' है जो कि अभिनेता दु:खी हो या सुखी हो उस अश्रु या रोमांच को अभिनय द्वारा प्रस्तुत करना होता है।

प्रत्येक दर्शक का अपना सुख दुख होता है। इसी प्रकार पात्र का भी अपना सुख दुख होता है। लेकिन देशकाल व परिस्थिति विशेष में नाट्य प्रयोग के दौरान एकाग्र होने के कारण अभिनेता पात्र के सुख दुख को अपना मान लेता है। इसी के कारण अभिनेता पात्र के सुख दुख के साथ व्यक्तिगत सुख दुखों को व्यक्त कर रहा होताहै किंतु प्रेक्षक को लगता है कि वह पात्र के सुख दुखों का अनुभव कर रहा है। प्रदर्षित किये जाने वाले भाव पात्र के हैं न कि नट के। सात्विक अभिनय का मूल मंत्र यही है।

सामान्याभिनय मे भी भरत ने अभिनय मे 'सत्व' की चर्चा की है। उन्होने इस अभिनय मे 'सत्व' पर अधिक ध्यान देने के लिए कहा है क्योकि पूरे नाट्यप्रदर्शन मे 'सत्व' की मौलिक महत्ता होती है। जिस अभिनय मे 'सत्व' का अधिक समावेश हो वह 'उत्तम', समान मात्रा मे हो तो 'मध्यम' तथा सत्व रहित अभिनय 'अधम' समझा जाना चाहिए। अतएव स्पष्ट है कि

टिप्पणी



भरत ने चारों प्रकार के अभिनय मे सात्विक को अभिनय की श्रेष्ठता व निपुणता का आधार माना है।

## पाठगत प्रश्न 4.2

1. आचार्य भरत ने कितने प्रकार के भाव बतलाए हैं?

   ..........................................................................................

2. स्थायी भाव क्या है?

   ..........................................................................................

3. विभाव से क्या तात्पर्य है?

   ..........................................................................................

4. आलंबन विभाव क्या है?

   ..........................................................................................

5. उद्दीपन विभाव क्या हैं?

   ..........................................................................................

6. अनुभाव से क्या तात्पर्य है?

   ..........................................................................................

7. अनुभाव के कितने प्रकार हैं?

   ..........................................................................................

8. सात्विक भाव कौन-कौन से हैं?

   ..........................................................................................

9. संचारी भाव क्या है?

   ..........................................................................................

10. स्तम्भ सात्विक भाव क्या ह?

   ..........................................................................................

टिप्पणी

## आपने क्या सीखा

- सात्विक अभिनय का संबंध उस अभिनय से है जिसमें सात्विक भावों की प्रधानता होती है।
- नाट्य मे 'सत्व' की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- जिस अभिनय मे 'सत्व' प्रधान हो वह 'उत्तम', समान हो तो 'मध्यम' तथा सत्व का अभाव हो तो उस अभिनय को 'अधम' समझा जाना चाहिए।
- किसी भी प्रस्तुति की सफलता व असफलता का मानक रस है। रस ही आनंद का पर्याय है। आचार्य भरत छठवें अध्याय में रस का चित्रण करते हैं।
- नाट्य में श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्‌भुत नामक अष्टरसों पर प्रकाश डालते हैं।
- अभिनेता मंच पर इन्हीं भावों का प्रदर्शन करता है। भाव अभिनय का एक महत्वपूर्ण कारक है।
- सातवें अध्याय में इन्हीं भावों का विस्तृत उल्लेख किया गया है। उनके पाँच प्रकार, आठ स्थायी भाव, तैतीस संचारी भाव व आठ सात्विक भावों आदि पर विमर्श है।
- आचार्य भरत अभिनेताओं द्वारा शरीर पर धारण किए जाने वाले अलंकार की चर्चा करते हैं। इस अलंकार के अंतर्गत वे पुष्पमाला, आभूषण तथा वेष विन्यास की विवेचना करते हैं।
- विभावानुभावसंचारीसंयोगाद्रसनिश्पत्तिः। अर्थात विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के साथ स्थायी भाव के योग से रस की निश्पत्ति होती है।
- अभिनेता के लिए सफल होने के लिए यह आवष्यक है कि वह अपने सत्व से अभिनय करे।

## पाठांत प्रश्न

1. सात्विक अभिनय से आप क्या समझें?
2. सात्विक भाव कौन-कौन से हैं? सत्व का प्रयोग करते हुए अभिनय करके दिखाएं।
3. रस और भाव क्या हैं? विभिन्न रसों के अनुरूप सात्विक अभिनय करके दिखाइए।

4. रस और सात्विक भाव का क्या संबंध है?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**4.1**

1. सात्विक का संबंध 'सतोभाव' से है जिसका तात्पर्य सत्व के होने से है।

2. नाट्य प्रदर्शन को देखकर दर्शकों को जिस आनंद की अनुभूति होती है वह रस है।

3. आचार्य भरत ने आठ रसों की चर्चा की है- श्रृंगार, हास्य, करुण रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक, अद्‌भुत

4. विभावानुभावसंचारीसंयोगाद्रसनिश्पत्ति:।

5. ह्रदय में उठने वाली अनुभूतियों, संवेगों और नाना प्रकार की मनोदशा को भाव कहते हैं।

6. श्रृंगार, वीर, रौद्र, वीभत्स

7. नायक नायिका के मिलन के दृश्य को देखकर जिस रस का आनंद प्राप्त होता है वह संयोग श्रृंगार है।

8. किसी पात्र के विकृत वेश, अलंकार, निर्लज्जता, लालचीपन, असंगत भाषण और अंगों के विकृत रूप आदि के प्रदर्शन के द्वारा यह उत्पन्न होता है

9. उत्तम प्रकृति और उत्साह नामक स्थाई भाव से वीर रस की उत्पत्ति होती है स्थिरता धैर्य शूरवीर का त्याग और निपुणता आदि अनुभवों से इसका अभिनय किया जाता है।

10. आश्चर्यचकित कर देने वाले दृश्यों को देखकर अद्‌भुत रस की अनुभूति होती है।

**4.2**

1. स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव।

2. स्थायी भाव का अभिप्राय उन भावों से है जो दर्शकों में स्थायी भाव से निवास करते हैं।

3. विभाव का अभिप्राय उन भावों से है जिनके कारण स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं।

4. आलंबन वह है जिसके लिए स्थाई भाव उत्पन्न होता है।

5. उद्दीपन का तात्पर्य उन भावों से है जिन से स्थाई भाव की उत्पत्ति को बढ़ावा मिलता है।

6. वे भाव जिनके द्वारा रति आदि भावों का अनुभावन होता है वह अनुभाव कहलाते हैं। अनुभाव एक तरह से मन में स्थित आंतरिक भावों की बाह्य अभिव्यक्ति की तरह होते हैं।

7. अनुभाव के चार प्रकार हैं- कायिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक।

8. स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, वैवर्ण्य, वेपथु, अश्रु तथा प्रलय

9. संचारी भाव का तात्पर्य उन भावों से है जो हृदय में पानी के बुलबुले के समान उठते और खत्म होते रहते हैं।

10. क्रोध, भय, हर्ष, लज्जा, दुःख, श्रम आदि के कारण आंगिक संचालन का जड़ हो जाना 'स्तम्भ' है।

# मॉड्यूल-7

**नाट्य का प्रायोगिक पक्ष**

इस मॉड्यूल में रंगमंच की तकनीकों को बताया गया है, साथ ही प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के प्रायोगिक पक्ष के माध्यम से नाट्य के प्रायोगिक पक्ष को समस्या बताया गया है।

5. रंगमंच तकनीक : एक परिचय

6. प्रबोधचंद्रोदय

टिप्पणी

# 5

# रंगमंच तकनीक : एक परिचय

पूर्व में हमने रंगमंच के बारे में जाना। रंगमंच क्या है? रंगमंच की उत्पत्ति कैसे हुई? रंगमंच के कितने प्रकार हैं? इत्यादि। अब इस अध्याय में हम रंग तकनीक के बारे में चर्चा करेंगे। शीर्षक से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका संबंध रंगमंच में प्रयुक्त किये जाने वाले तकनीकों से है। यदि आपने कोई नाटक देखा है तो उसकी कल्पना कीजिए। सोचिए कि आपने उस नाटक में अभिनेता के इर्द-गिर्द कौन-कौन सी चीजों को देखा है जो नाटक को और भी प्रभावी बना रहे थें। निश्चय ही आप उन चीजों में सेट, लाइट, साउंड उपकरण को देखेंगे। वास्तव में इन्हें ही रंगतकनीक के नाम से जाना जाता है। यह सभी नाटक के अनुरूप प्रयोग किये जाते हैं।

रंगमंच की कई प्रस्तुति शैलियाँ हैं जिनके विषय में हमने पूर्व में चर्चा की है। प्रत्येक शैलियों में इन तकनीकों-सेट, लाइट और ध्वनि को एक विशेष तरीके से प्रयोग किया जाता है। इन रंग तकनीकों का कार्य अभिनय को विशेष प्रभाव प्रदान करना होता है। भारतीय रंगमंच हो अथवा पश्चिमी रंगमंच दोनों की ही प्रकृति एक-दूसरे से भिन्न है। इसी भिन्न स्वरूप के साथ ही इन दोनों की रंगतकनीक भी भिन्न है। किंतु आधुनिक रंगमंच के साथ ही दोनों रंगमंच का मिलन दिखाई देता है। इसी के साथ ही रंगतकनीकों पर भी इसका गहरा असर पड़ा जिसकी चर्चा भी हम करेंगे।

## अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत आप-

- रंगमंच तकनीक का सामान्य परिचय जानते हैं;
- रंगमंच तकनीक की प्राचीन विधाओं को जानते हैं;

टिप्पणी

- रंगमंच तकनीक की आधुनिक विधाओं को जानते हैं;
- रंगसज्जा का नाट्य प्रस्तुति में महत्व समझते हैं;
- नाट्य मंचन में प्रकाश और ध्वनि का महत्व जानते हैं; और
- प्रकाश-ध्वनि प्रस्तुति के विभिन्न प्रकारों को जानेंगे।

## 5.1 रंग-तकनीक का सामान्य परिचय

रंगमंच दृश्य-श्रव्य माध्यम है। जब एक दर्शक किसी नाटक को देखने जाता है तो वह मंच पर घटित होने वाली घटनाओं को स्पष्ट रूप से देख व सुन सके। एक सफल नाट्य प्रस्तुति के लिए आवश्यक है कि रंगतकनीकों पर विशेष रूप से कार्य किया जाय। ये रंगतकनीक न केवल नाटक को रोचक और प्रभावी बनाते हैं बल्कि यदि इनका प्रयोग एक विशेष दृष्टि के साथ किया जाय तो ये नाटक के अर्थों को एक नया आयाम भी देते हैं जो अक्सर नाटक में ही छिपा रहता है।

जब हम रंगतकनीक संज्ञा का प्रयोग करते हैं तो यह एक सामूहिक अर्थ प्रकट करता है। रंगमंच अर्थात नाटक, अभिनय (कार्यकलाप व वाचन), रंगसज्जा, रूपसज्जा, लाइट, वेशभूषा, साउंड आदि का समन्वित रूप। और तकनीक अर्थात व्यवहार का वह तरीका जो आसानी से परिकल्पना को साकार कर दे। इस प्रकार रंगतकनीक के अंतर्गत उन सभी अवयवों के तकनीक का बोध होता है जिनके समन्वय से रंगमंच आकार लेता है।

### नाट्यलेखन में तकनीक

प्राय: रंगमंच की शुरुआत एक लिखित नाटक से होती है। नाटककार अपनी कल्पना से नाट्य लेखन करते हुए रंगमंच के सभी अवयवों के प्रयोग को निर्धारित करता है। उदाहरण के लिए- मंच पर लाइट कब आएगी। अभिनेता कहाँ से मंच पर प्रवेश करेगा और कब, कहाँ की ओर प्रस्थान करेगा। यदि नाटककार स्वयं रंगमंच का कलाकार है तो वह रंग तकनीकों का प्रयोग बहुत ही सुंदरता से अपने नाटक में करता है। एक रचनात्मक नाटककार अपनी सर्जनात्मकता से रंगमंच पर तकनीकों के सहारे सफल नाटक का रोडमैप प्रस्तुत करता है।

### निर्देशन में तकनीक

नाटक का निर्देशन करते हुए निर्देशक भी प्राय: कुछ तकनीकों का प्रयोग करता है जिसका संबंध नाटक की प्रस्तुति से होता है। पूर्वाभ्यास के दौरान निर्देशक इन तकनीकों के माध्यम से अभिनेता के अभिनय को निर्देशित करता है। एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में वह कभी नाटककार की तकनीक को अपना लेता है तो कभी-कभी वह उसे नकार भी देता है। अक्सर हम देखते हैं कि कुछ प्रस्तुति लिखे गए नाटक से बिल्कुल भिन्न होती है या फिर नाटक

टिप्पणी

के अनछुए पहलुओं पर निर्देशक का पूरा फोकस होता है। ऐसे में निर्देशक एक भिन्न दृष्टिकोण से नाट्य तकनीकों का प्रयोग करता है।

### प्रस्तुति तकनीक

जब हम नाटक देखते हैं तो प्रायः प्रस्तुति के दौरान कुछ तकनीकी वस्तुओं का प्रयोग पाते हैं। जैसे- लाइट उपकरण, सेट, साउंड उपकरण आदि। ये कुछ ऐसी चीजे हैं जो हमें प्रत्येक नाटक में देखने को मिलती हैं। नाटककार और निर्देशक द्वारा परिकल्पित दृश्य को ये तकनीकी उपकरण प्रस्तुति योग्य बनाने में महती भूमिका निभाते हैं। दृश्यों के मूड, टाइम, प्रभाव आदि के अनुरूप इन तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।

## 5.2 रंग तकनीक की प्राचीन विधाएं

रंगतकनीक में पहला जरूरी तत्व दृश्य-बंध माना गया है। दृश्य नाटक के लिए पृष्ठभूमि का कार्य करता है। मंच पर बनाए गए दृश्य बंध से दर्शकों को नाटक के वातावरण से परिचित कराया जाता है। दृश्य-बंध वास्तव में नाटक के लिए बने मंच पर प्रस्तुत एक ऐसा रूप है जो प्रायः नाटक में आदि से अंत तक रहता है। यह दृश्य-योजना का समन्वित रूप है। आधुनिक दौर में दर्शकों को पर्दा खुलते ही पृष्ठभूमि पर निर्मित, अंकित या किसी अन्य रूप में प्रस्तुत जो सेट नजर आता है, वही दृश्य-बंध है। इस दृश्य बंध को कैसे बनाया जाय? इस संबंध में समय-समय पर विचार-विमर्श किया जाता रहा है। मुख्य रूप से रंगतकनीक की प्राचीन विधाओं को समझने के लिए उन्हें दो वर्गों में बांटना होगा- 1. दृश्य-श्रव्य तकनीक और 2. आलोकन तकनीक।

### दृष्य-श्रव्य तकनीक

जैसा कि हम जानते हैं कि रंगमंच दृश्य-श्रव्य माध्यम है। ऐसे में आदिम रंगमंच से लेकर प्रेक्षागृह उद्‌भव तक इसी माध्यम को लेकर विचार किया जाता रहा। दृश्यता व श्रव्यता को ध्यान में रखकर प्रेक्षागृह की कल्पना की गई। उदाहरण के लिए 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित विकृष्ट, चतुरस्र और त्रयस्र प्रेक्षागृह के ज्येष्ठ, मध्यम और अवर प्रकार बतलाए गए। इनमें से दृश्यता व श्रव्यता के आधार पर विकृष्ट मध्यम प्रेक्षागृह को श्रेष्ठ बतलाया गया। कुछ इसी प्रकार ग्रीक रंगमंच में पहाड़ों को काटकर बनाए गए रंगमंच के साथ ही मुखौटे (जिनमें ध्वनि विस्तार के लिए चोंगेनुमा व्यवस्था थी), गद्देदार जूते (ताकि अभिनेता का आकार बड़ा दिखे) आदि का प्रयोग मिलता है। हमें भारतीय और पश्चिम रंगमंच दोनो में ही सीढ़ीनुमा दर्शक दीर्घा देखने को मिलती है।

### मंच आलोकन

आदिम काल से 16वीं शताब्दी तक नाटकों की प्रस्तुतियाँ मुक्त आकाश के नीचे दिन में की

जाती थीं। यूनानी नाटक बिना छत की रंगशालाओं में प्रस्तुत किए गए। भारत में बौद्धों नें मुक्ताकाशी मंच पर अथवा फिर बिना छत की वर्गाकार रंगशालाओं में अपनी प्रस्तुतियाँ की। मध्ययुगीन कर्मकांडी नाटक, गिरिजाघरों के भीतर, जहाँ दिन की रोशनी खिड़की दरवाजो या झरोंखों से अंदर आती थी, अभिमंचित किए गए। कामेंडीया-देल-आर्ते एवं आरंभिक एलिजबेथन काल के नाटकों के लिए कृत्रिम रोशनी की अवश्यकता ही नहीं थी। ऐसा माना जाता है कि जब ये नाटक उस समय में होते थे तो कृत्रिम प्रकाश व्यवस्था के बारे में सोचा ही नहीं गया था।

अभी तक रंगमंच में प्रकाश (कृत्रिम) नहीं आया था लेकिन ये अनुमान लगा सकते हैं कि जब आदिमानव रात को शिकार को पका कर खाते रहे होंगे। वे आदिम प्रस्तुतियाँ अलाव के इर्द-गिर्द हुई होंगी। जंगली जानवर आग से डरते थे और इसलिए आदि मानवों ने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए रात का समय चुना। कुछ शोधकर्ताओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ग्रीक नाटक जानबूझकर धीरे-धीरे रात तक प्रदर्शित किए जाते थे, क्योंकि दिन में आग उतनी प्रभावी नही दिखती जितनी रात में। ऐसे नाटको में हस्त सामग्री के रूप में हमें जलती हुई मशालें, दीपक तथा रोशनी के अन्य स्त्रोतों का प्रयोग मिलता है।

तमिलनाडु और केरल के नाट्य प्रदर्शनों के कुछ रूपों में आलोकन एक अन्य प्रकार के रोचक दीपकों से किया जाता है। नारियल के खोल को दो अर्धगोलाकार आकृतियों में काटकर दीपक पात्र के रूप में प्रयोग किया जाता है। इस तरह प्रकाश व्यवस्था की जाती है, जिसमें तेल भरने के लिए प्रदर्शन को बीच में रोकना नहीं पड़ता था। यहाँ 'स्ट्रीप लाइट' बांस कि बनाई जाती है। केरल के ही सुदूर ग्रामीण अंचल के रंगमंच 'थैय्याम' में दूसरे प्रकार के आलोकन का प्रयोग होता है। यह प्रकाश उपकरण एक जलती हुई मशाल है जिसे सूखे नारियलों के पत्तों के साथ बनाया जाता है। प्राचीन पारंपरिक शैलियों जैसे नौटंकी, जात्रा, तमाशा, भवाई, यक्षगान, नाचा, माच आदि में इन मशालों का उपयोग होता था और यह आज भी जीवित है।

## पाठगत प्रश्न 5.1

1. रंगतकनीक से आप क्या समझते हैं?

   ....................................................................................................

2. नाट्यलेखन तकनीक से क्या अभिप्राय है?

   ....................................................................................................

3. प्रस्तुति हेतु प्रयुक्त की जाने वाली तकनीक कौन-कौन सी हैं?

   ....................................................................................................

4. दृश्य-बंध क्या हैं?

.......................................................................................................

5. प्रेक्षागृह की रचना में किन बातों का ध्यान रखना पड़ता है?

.......................................................................................................

6. नाट्यशास्त्र में किस रंगमंच को श्रेष्ठ बतलाया गया है?

.......................................................................................................

7. ग्रीक रंगमंच में दृश्यता-श्रव्यता को ध्यान में रखकर क्या प्रयोग किया जाता था?

.......................................................................................................

8. पश्चिम रंगमंच में कृत्रिम प्रकाश का प्रयोग कब से मिलता है?

.......................................................................................................

9. तमिलनाडु और केरल के नाट्यप्रदर्शनों में प्रकाश किससे किया जाता है?

.......................................................................................................

10. स्ट्रीप लाइट कैसे बनाई जाती है?

.......................................................................................................

## 5.2 रंग-तकनीक की आधुनिक विधाएं

रंगमंच तकनीक की आधुनिक विधाओं में सेट, लाइट, साउंड, इफेक्ट आदि को देखा जा सकता है। जब तक नाट्य प्रस्तुतियाँ खुले में की जाती थीं तब तक इन सभी की आवश्यकता नहीं थी किंतु बंद प्रेक्षागृहों ने इन आवश्यकताओं को जन्म दिया। इन आधुनिक विधाओं का जन्म पश्चिम में मंच प्रकाश के साथ आरंभ हुआ।

प्रकाश व्यवस्था के क्षेत्र में नया प्रयोग सर्वप्रथम इतालवी कलाकार 'सेबस्तीनों सरेलियो' ने किया। सेबस्तीनों सरेलियो ने (1475-1554) वास्तुशिल्प एवं मंच के अलावा दृश्यमूलक चित्र लगानें के विषय में सोचा। इस जानकारी के साथ रोमन रंगमंच का अनुकरण कर आयताकार हॉल का निर्माण किया। सरेलेयो के अनुसार मंच की पृष्ठभूमि से लेकर 'विंग्स' और 'पैनल' से होते हुए रंगशाला में रंगीन दृश्यवाली का निर्माण किया गया। इस विस्तार में 'पर्सपेक्टिव' दृश्य सिद्धांतों और त्रिआयामी उपायो का प्रभावपूर्ण उपयोग किया गया था। इसके

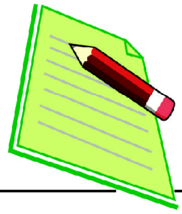

टिप्पणी

लिए उन्होने सामने की ओर से मोमबत्ती की रोशनी को बढ़ाने के लिए मोमबत्ती के सामने आईने, चमकती तश्तरियों छिछली थालियों का इस्तेमाल किया। रंगीन प्रभाव उत्पन्न करने के लिए बोतलों में रंगीन तरल पदार्थ दल कर उन्हे जलती मोमबत्तियों के सामने रख कर उपयोग किया गया। इस प्रभाव को आगे बढ़ाने में अंग्रेज डिजाइनर इनिगो जोन्स (1573-1652) का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

कालांतर में मोमबत्तियों के साथ-साथ तेल बत्तियों वाले लैंपो का भी इस्तेमाल किया गया, किन्तु इस तैरती तेल बत्तियों को प्रस्तुतियों के दौरान बार-बार काटने-छाटने की जरूरत पड़ती थी। इस काम के लिए 'गुल तराशों' को बार-बार मंच पर आना पड़ता था। कहा जाता है कि 'फुटलाइट' शब्द की उत्पत्ति इन्हीं तैरती तेल बत्तियों से हुई। आगे चलकर तेजरोशनी के लिए ज्योति को गैस अथवा बर्नरो से ढकने की प्रथा शुरू हुई।

धीरे-धीरे सरेलियो के बाद की अवधि में बेहतर प्रकाश व्यवस्था के लिए मोमबत्तियों और तेल बत्तियों के इस्तेमाल में बेतहाशा वृद्धि हुई और उसका परिणाम ये हुआ की दर्शकों की आँख में वो तेज और मुक्त रोशनी चुभने लगी। इस समस्या के समाधान हेतु इतालवी डिजाइनर निकोल सबातिनि (1574-1654) नें प्रयास किया। उसने प्रकाश के स्त्रोत को छुपाने का उपाय ढूँढ निकाला और वर्तुलाकार नली को ऊपर से नीचे की ओर बत्ती पर ओढ़ाकर या ढँककर प्रकाश स्त्रोत को छुपाने का प्रयास किया।इसी प्रकार सुविख्यात अभिनेता व डिजाइनर 'डेविड गैरिक' (1717-79) का प्रयास भी उल्लेखनीय है। उन्होंने फुट लाइट को मंच फर्श से थोड़ा नीचे खाँचेदार तल पर इस प्रकार रखा की मंच की तरफ ढलान और रंग शाला की तरफ चढ़ा हुआ था। इस प्रकार सबातिनी और गैरिक डेविड नें रोशनी को दर्शकों की आँख से बचाकर उसे प्रस्तुत करने में बेहतर रोशनी हासिल करने में कामयाबी हासिल की।

सन 1781 ई. गैस बत्ती का आविष्कार हुआ किन्तु रोशनी के लिए नए स्त्रोत का रंगमंच के लिए पहली बार इस्तेमाल सन् 1817 ई. में हुआ। इस घटना को मंचीय आलोकन की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। अतः मंच आलोकन के विकास का दूसरा चरण प्रकाश की तीव्रता पर नियंत्रण था। मंचीय गतिविधियों में बगैर किसी असुविधा के अपनी इच्छा अनुसार प्रकाश की तीव्रता को घटाया बढ़ाया जा सकता था। इसे गैस टेबल में जहाँ से नली या रबर की पाइपों से गैस बहती थी, से नियंत्रित किया जाता था। तीव्रता पर नियंत्रण पर कार्य हेनरी इरविंग (1838-1905) ने किया। जैसे प्रकाश को अलग-अलग स्थानों को प्रकाशित करना, रंगों का इस्तेमाल करना, प्रस्तुतियों के दौरान रंगशालाओं की बत्तियाँ बुझा देना आदि।

यांत्रिक बदलाव की इस समूची विकासात्मक प्रक्रियाओं में प्रचलित या उसके बदले दूसरे उपकरण सहजता से प्रतिस्थापित होते गये। उदाहरण के तौर पर 1879 में विद्युत प्रकाश अन्वेशित हुआ। अतः संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि जैसे-जैसे मानव सभ्यता तथा तकनीकी विकास होते गए वैसे-वैसे आधुनिक उपकरणों का आविष्कार हुआ और मंच आलोकन की प्रक्रिया विकसित होती गई।

संन् 1909 में सर हम्फ्री डैवी ने वृत्त प्रकाश का आविष्कार बिजली के रूप में किया। पाँच वर्ष पश्चात एम.जे. डुबोसेक ने इसी वृत्त प्रकाश के अनेक महत्वपूर्ण उपकरणों जैसे बेबी लाइट, फ्रेजनल, हेलोजन, पेजेंट, फ्लड लाइट, पी.सी., प्रोफाइल, पार एक अतिरिक्त प्रभाव उत्पन्न करने हेतु इन उपकरणों का प्रयोग शुरू किया। अत: सन् 1900-1914 की अवधि में मंच आलोकन जगत में तेजी से यांत्रिक और कलात्मक बदलाव हुये।

वास्तव में आधुनिक रंगमंच में प्रकाश व्यवस्था का अपना मनोविज्ञान है जो प्राचीन परंपरा से पर्याप्त रूप से विकसित है। अब तो मंहगे लाइट व साउंड उपकरणो के बिना नाट्य प्रस्तुतियों की कल्पना ही नहीं की जा सकती। रंगकर्म को अगर सबसे ज्यादा प्रभावित किया तो वह है मंच आलोकन। इसका महत्व आज के रंगमंच के लिए उतना ही है जितना एक अभिनेता और निर्देशक का। आधुनिक युग में प्रकाशीय उपकरणो में निरन्तर प्रयोग जारी है।

## पाठगत प्रश्न 5.2

1. रंगतकनीक की आधुनिक विधाएँ क्या हैं?

   ......................................................................................................

2. प्रकाश व्यवस्था में पहला प्रयोग किसने किया?

   ......................................................................................................

3. रंगीन प्रभाव उत्पन्न करने के लिए क्या किया जाता था?

   ......................................................................................................

4. गैस बत्ती का प्रयोग कब किया गया?

   ......................................................................................................

5. एम.जे. डुबोसेक ने मंच आलोकन में क्या प्रयोग कियां?

   ......................................................................................................

## 5.3 रंग-सज्जा

नाट्य प्रस्तुति वास्तव में लेखक की कहानी को दर्शकों के लिए मंच पर पुन: सृजन का कार्य करती है। इस दृष्टिकोण में क्रिया अथवा कार्य व्यापार सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व होता है जो केवल शारीरिक गतिशीलता अथवा मात्र संभाषण ही नहीं होता अपितु अभिनय की आत्मा

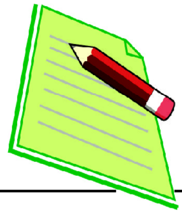



नाटकीय गतिशीलता में निहित होता है। यह लयबद्ध संभाषण एवं शारीरिक मुद्राओं के माध्यम से नाट्यालेख को मंच पर जीवंत रूप से साकार कर देता हैं। इसमें कई अन्य सहयोगी कलाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान होता हैं। उनमें रंगसज्जा प्रमुख है जो नाट्यक्रिया का वातावरण तैयार कर प्रस्तुति को विकसित एवं समृद्ध करती है।

यदि ध्यान से देखा जाय तो आज रंगमंच में रंगसज्जा दो अर्थ प्रस्तुत करता है। रूढ् तकनीकी अर्थ में इसका तात्पर्य चित्रित पर्दों, झालरों, चौखटों एवं कुछ विशेष प्रकार के यांत्रिक उपकरणों व आकृतियों से होता है जो आकाश, वृक्ष, तख्त आदि की छवि प्रस्तुत करते हैं। परंतु अधिक विस्तृत अर्थ में वे सभी दृश्य तत्व जो मंच पर प्रदर्शन के समय अभिनेता के चारों ओर उपस्थित रहते हैं- मंच सामग्री या अन्य वस्तुएँ, वस्त्र व प्रकाश एवं उपर्युक्त विशाल दृश्य आकृतियाँ इस शब्द की सीमा में आ जाती हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि रंगसज्जा का प्रमुख कार्य मंच पर उपस्थित समस्त भौतिक एवं आभासीय तथा विशेष व साधारण तरीके से सहायता प्रदान करना होता है।

## रंग-सज्जा का कार्य

वातावरण निर्माण के रूप में रंगसज्जा के तीन प्रमुख कार्य निर्धारित किये जा सकते हैं-

1. नाट्य का स्थल निर्धारण
2. नाट्य क्रिया में अभिवृद्धि
3. नाट्य क्रिया को अलंकृत करना, उसे रोचक बनाना।

रंग सज्जा का प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य नाट्य क्रिया को स्थान प्रदान करना तथा घटना स्थल की उपयुक्त एवं स्पष्ट पहचान स्थापित करना है। प्रेक्षागृह का पर्दा खुलने के बाद दर्शक सबसे पहले दृश्य सज्जा का ही अवलोकन करती है। इससे वह सहज ही अनुमान लगा लेती है कि संपूर्ण नाटक का घटना स्थल युद्ध भूमि है, घर का अतिथि कक्ष है।

यह रंग-सज्जा नाट्य चरित्रों के व्यक्तित्व को प्रतिबिंबित कर नाट्य क्रिया को प्रभावी बना सकता है। उदाहरण के लिये एक कमरे का सामान्य दृश्य, उसमें रहने वाले व्यक्तियों की रूचि एवं आदतों को दिखता है। चरित्र जिस प्रकार अपने कमरों को साफ सुथरा अथवा बिखरा हुआ रखते हैं, जिस प्रकार का रंग दीवार पर लगाते हैं, जिस तरह की कुर्सी पर बैठते हैं या जिस प्रकार के बर्तन, उपकरण तथा अन्य वस्तुओं का उपयोग करते हैं, उससे उनके वास्तविक जीवन की झलक एवं उनके वास्तविक चरित्र का संकेत मिलता है।

रेखाओं, रंगों एवं अन्य तत्वों के माध्यम से रोचक संयोजन बनाकर रंग सज्जा द्वारा आकर्षक एवं अर्थपूर्ण पृष्ठभूमि का निर्माण किया जा सकता है। यदि रंगसज्जा आकर्षित नहीं करता तो इसे नाट्य क्रिया का उपयुक्त वातावरण नहीं कहा जा सकता।

टिप्पणी

## रंग-सज्जा की प्रक्रिया

रंग-सज्जा की प्रक्रिया के संबंध में कोई निश्चित नियम नहीं है। हर विन्यासकर्ता की अपनी अलग प्रक्रिया हो सकती है। किंतु प्रत्येक प्रक्रिया में कुछ तत्व समान होते हैं। जिनका ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिये-

1. नाट्यालेख का विश्लेषण एवं उसकी व्याख्या।
2. प्रस्तुति में कार्यरत सदस्यों के साथ विचार-विमर्श। यह निम्न बिंदुओं पर होनी चाहिये-
   - निर्देशक की आवश्यकता
   - प्रस्तुति के लिए चयनित शैली
3. नाट्य प्रस्तुति की तकनीकी आवश्यकताएँ
   - दृश्यों की संख्या
   - एक दृश्य से दूसरे दृश्य में परिवर्तन की समस्या
   - अभिनेता की आवश्यकता
4. मंच क्षेत्र एवं उपलब्ध सुविधाएँ
   - मंच क्षेत्र का आकार एवं वहाँ पर उपलब्ध सुविधाएँ
   - भंडारण स्थान
   - स्थानांतरण सुविधा
   - प्रकाश उपकरण एवं संचालन की सुविधा
5. दृष्टि रेखाएँ
   - दर्शक दीर्घा एवं मंच क्षेत्र का अंर्तसंबंध
   - लंबवत दृष्टि रेखा
   - क्षैतिजीय दृष्टि रेखा
6. शोध कार्य
   - शोध सामग्री जिस पर विन्यास आधारित है।

टिप्पणी

- नाट्य क्रिया की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

7. रेखाचित्र एवं लघु आकारीय मॉडल

8. विन्यासकर्ता की योजना

- धरातलीय योजना (Ground plan)
- सम्मुख दृष्य (Front elevation)
- विस्तृत रेखाचित्र (Detail drawing)
- संपूर्ण विस्तृत रेखाचित्र (Full scale detail drawing)

9. सामग्री का चयन

- मंच सामग्री
- हस्त सामग्री
- अलंकरण सामग्री

10. दृश्य रंगन

तैयार दृश्य सज्जा को अलंकृत करना एवं अंतिम स्वरूप देना।

## पाठगत प्रश्न 5.3

1. रंगसज्जा क्या हैं?

.........................................................................................................

2. रंगसज्जा से स्थल का निर्धारण कैसे होता है?

.........................................................................................................

3. रंगसज्जा के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं?

.........................................................................................................

4. रंगसज्जा को किन तत्वों के माध्यम से रोचक बनाया जाता है?

.........................................................................................................

टिप्पणी

## 5.4 रंगमंच में प्रकाश

रंगमंच में नाटक की प्रस्तुति को प्रस्तुत बनानें में प्रकाश व्यवस्था का बहुत बड़ा योगदान है क्योंकि रंगमंच में अभिनय, मंचपरिकल्पना, रूपसज्जा, निर्देशन, वस्त्रसज्जा आदि सभी महत्वपूर्ण विधाएँ होनें के बावजूद प्रकाश व्यवस्था के बिना दर्शकों पर अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ सकती क्योंकि नाटक की दृश्यता उसकी प्रस्तुति को निखारती है और दृश्यता केवल प्रकाश से ही संभव है, चाहे वो प्रकृतिक हो या कृत्रिम।

रंगमच को अगर सबसे ज्यादा प्रभावित किया है तो प्रकाश ने। अतः हम कह सकते है कि आज के नाटकों में जितना महत्व अभिनेता एवं निर्देशक का है उतना ही महत्व प्रकाश या प्रकाश व्यवस्था का भी है। मंच आलोकन अब नाट्य प्रस्तुति के लिए अनिवार्य शर्त बन गया है।

### रंगमंच में प्रकाश का उद्देश्य

किसी भी नाटकीय प्रस्तुति में प्रकाश के उद्देश्य को मुख्य रूप से 5 भागों में बांटा जा सकता है, इसका वर्णन इस प्रकार है-

**दृश्यताः** प्रकाश व्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण है, दृश्यता अर्थात मंच पर होने वाली घटना को दर्शकों तक पहुँचाना। दृश्य का भाव दर्शकों को चेहरा दिखाना बस नहीं है बल्कि मंच पर वांछित प्रकाश का होना आवश्यक है ताकि दृश्य दर्शकों की समझ में आ सके।

**विश्वसनीयताः** नाटक में होने वाली प्रकाश व्यवस्था विश्वास करने योग्य होनी चाहिए ताकि उसके दृश्यों से दर्शक संबंध जोड़ सके कई बार दृश्य के भावों के विपरीत लाइटिंग होनें से दर्शकों को वह दृश्य समझ में ही नहीं आता।

**प्लास्टिक क्वॉलिटीः** मंच पर दिखाने वाले दृश्यों में क्वालिटी होनी चाहिए। इसे 3डी क्वालिटी भी कहते हैं। यह प्रकाश व्यवस्था इस तरीके से होनी चाहिए कि अभिनेता, सेट, प्रॉपर्टी आदि को 3डी रूप में दिखा सकें ताकि दर्शकों को दृश्य और भी स्पष्ट दिखाई दे।

**कंपोजिशनः** नाटक में दृश्य के माध्यम से कंपोजिशन बनाना प्रभावी होता है। जिस प्रकार निर्देशक ब्लॉकिंग के माध्यम से तरह-तरह की composition बनाता है, उसी तरह से लायटिंग में भी composition बनाया जाता है। चूंकि नाटक दृश्य और श्रव्य प्रधान है, इसलिए दृश्य बनाने में composition बहुत प्रभाव पैदा करती है।

**मूडः** लाइट डिजाइन में दृश्य के माध्यम से भावों को स्पष्ट किया जाता है। मूड या भावों को बनाने में लाइट को कलर या इंटेंसिटी के माध्यम से बनाया जाता है। अतः लाइट का उद्देश्य मंच पर अभिनेता के साथ-साथ पूरे दृश्य के भावों या मूड को दिखाना होता है।

## रंगमंच में प्रकाश नियंत्रण

रंगमंच पर प्रकाश का प्रयोग बहुत ही रचनात्मक तरीके से किया जाता है। यहाँ हम उन्हीं कुछ बिंदुओं पर चर्चा करने जा रहे हैं।

**तीव्रता** : तीव्रता अर्थात क्षमता। प्रकाश को नियंत्रित करने का एक माध्यम। इसके माध्यम से प्रकाश को कम या ज्यादा किया जा सकता है। जिससे दृश्यों पर बहुत असर पड़ता है इसे डिमर की सहायता से नियंत्रित किया जाता है।

**रंग:** इसका उपयोग हम मंच पर दृश्य को सुंदर बनाने के लिए करते है। जिस प्रकार सभी भावों का अपना एक रंग होता है। अधिकांशत: मृत्यु, वीभत्स, क्रोध के दृश्य में लाल रंग का प्रभाव दिया जाता है। जैसे रात के लिए नीले रंग का उपयोग किया जाता है।

**वितरण:** मंच पर लाइट को कई हिस्सों में बांटा जाता है। दृश्यों के हिसाब से प्रकाश का वितरण किया जाता है। इसमें कंपोजिशन भी शामिल है। इसके लिए डिमर और कंसोल बोर्ड का उपयोग किया जाता है।

**गति:** मंच पर एक कोने पर हो रहे दृश्य से दूसरे कोने पर हो रहे दूसरे दृश्य पर फेडइन और फेडआउट के माध्यम से जाना ही प्रकाश की गति है इसके आलवा तीव्रता कम ज्यादा करना भी प्रकाश मूवमेंट है।

### प्रकाश उपकरण

मंच पर प्रयुक्त की जाने वाले प्रकाश उपकरणों को उनके कार्य के अनुसार निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. फ्लड लाइट: इसके अंतर्गत मुख्य रूप से उन्हें रखा जाता है जिनका प्रयोग पूरे मंच को प्रकाशित करनें में किया जाता है। इसके प्रयोग से मंच के किसी एक क्षेत्र को प्रकाशित नहीं किया जा सकता है। इस वर्ग में हैलोजन, पार, स्ट्रिप, स्कूप लाइट, एल.ई.डी. लाइट्स आती है।

2. स्पोट लाइट: ये लाइट उपकरण आलोकित करने पर जिस दिशा में लटकाए गये हैं, मंच के उस क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं। ये प्रमुख रूप से मंच पर एक गोल घेरे का निर्माण करते हैं। कुछ लाइट्स द्वारा बने गोल प्रकाशवृत्त के किनारे स्पष्ट होते हैं और कुछ के अस्पष्ट। इस वर्ग में मुख्य रूप से पी.सी. स्पॉट, फ्रिजनल स्पॉट, प्रोफाइल, बेबी स्पॉट, फॉलो स्पॉट आदि रखे गए हैं।

3. इफेक्ट लाइट: इनके अंतर्गत उन प्रकाश उपकरणों को रखा गया है, जो मंच पर विशेष प्रभाव उत्पन्न करनें के लिए प्राय: उपयोग में लाए जाते हैं। उदाहरण के लिए-

साइक्लोरामा पर चाँद या विशेष आकृति बनाने के लिए पानी का इफेक्ट प्रस्तुत करनें आदि में। इस वर्ग में मुख्य रूप से मूविंग हेड लाइट, यू.वी.लाइट, वाटर इफेक्ट, इफेक्ट प्रोजेक्टर, फॉग मशीन इत्यादि को रखा गया है।

## पाठगत प्रश्न 5.4

1. रंगमंच में प्रकाश व्यवस्था से क्या तात्पर्य है?

   ..........................................................................................................

2. प्रकाश के उद्देश्य क्या हैं?

   ..........................................................................................................

3. रंगमंच में प्रकाश नियंत्रण के कारक कौन-कौन से हैं?

   ..........................................................................................................

4. प्रकाश उपकरणों को कितने वर्गों में बाँटा गया है?

   ..........................................................................................................

## 5.5 रंगमंच में ध्वनि तकनीक

नाटक के प्रभाव को तीव्र करने के लिए ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। ध्वनि तकनीक से यहाँ तात्पर्य पात्रों की वाणी और संवादों के बोलने से उत्पन्न ध्वनि न होकर मंच पर संगीत या कुछ विषेश ध्वनियों से है जो वातावरण को बनाने में सहायक होती है। इसे ही रंग-तकनीक में ध्वनि प्रभाव कहा जाता है।

वैसे तो ध्वनि प्रभाव नाटक के पात्रों द्वारा प्रयुक्त संवाद से सर्वथा अलग ध्वनि है जो रंग-व्यापार में सहायक होती है। नाटक में शोकमय वातावरण उभारने के लिए नेपथ्य से वायलिन का दुखद संगीत, हर्षोल्लास दिखाने के लिये शहनाई, वीरता जाग्रत करने के लिये नगाड़ा, तुरही आदि की संगीतमय ध्वनियाँ उत्पन्न की जाती हैं। इनसे रंग-व्यापार निश्चित रूप से अधिक प्रभावी होता हैं यदि इनका प्रयोग निश्चित समय पर निश्चित अनुपात में किये जाए।

आकाशवाणी या कोई मायावी प्रभाव दिखाने के लिए विलक्षण ध्वनियों का प्रयोग किया जाता है। इनके प्रभाव में यह सतर्कता विशेष रूप से बरतनी पड़ती है कि ये ध्वनियाँ ऐसे निश्चित सुर में हो ताकि पात्रों के संवाद ठीक तरह से दर्शकों को सुनाई दें। साथ ही ये ध्वनियाँ ऐसी भी नहीं होनी चाहिये कि दर्शक का ध्यान मूल बिंदु से उठाकर कहीं और ले जाएँ। इनका

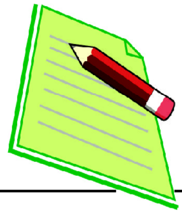

टिप्पणी

संयमित निश्चित प्रयोग ही होना चाहिये। कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि ये ध्वनियां मूल नाटक से ज्यादा आकर्षक होती है और नाटक का मर्म इनके कारण दब जाता है।

ध्वनि प्रभाव सभी प्रकार के रसों की सृष्टि करने में सहायक होता है। शृंगार, शांत, हास, वीभत्स, अद्‌भुत आदि सभी का सृजन ध्वनि प्रभाव से हो सकता है। ये ध्वनि प्रभाव कई बार नाटक के दृश्य-परिवर्तन के सूचक भी होते हैं। संगीत की एक निश्चित धुन प्रत्येक परिवर्तन पर बजने से दर्शक को दृश्य-परिवर्तन की सूचना प्राप्त हो जाती है।

ध्वनि प्रभाव मंच पर प्रस्तुति के समय ही प्रस्तुत न करके पहले ही से रिकॉर्ड कर लिए जाते हैं। इससे पूर्वाभ्यासों में होने वाले व्यय में पर्याप्त कमी हो जाती है, साथ ही समय भी बच जाता है। टेप के द्वारा ध्वनियों को प्राकृतिक रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है। बाजार के दृश्य में, किसी वास्तविक बाजार के हो-हल्ले का, वर्षा के दृश्य में प्राकृतिक वर्षा और बिजली की कड़क की रिकॅर्डेड ध्वनि पर्याप्त रंग-प्रभाव उत्पन्न कर देता है।

कई बार प्रस्तुति में पात्र होंठ ही हिलाता है और पार्श्व से ध्वनि उसके संवादों को प्रस्तुत करती हैं। यह भी प्रभावकारी है। आकाशभाषित (आकाशवाणी) कृष्ण की अति गंभीर वाणी को 'अंधायुग' (निर्देशक अल्का जी) के पुराना किला, दिल्ली के मुकताकाशी मंच पर बहुत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया था।

वैसे तो नाट्य प्रस्तुति में संगीत का जाने अनजाने प्रयोग होता ही है परंतु उसके साथ-साथ कभी-कभी विशेष प्रभाव उत्पन्न करने के लिए अन्य ध्वनियों का भी प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए- जहाज का टूटते हुए दिखाना मंच पर कठिन है पर इसी के स्थान पर जहाज टूटने की ध्वनि से ही दर्शक इस दृश्य की कल्पना स्वयमेंव ही कर लेते हैं। यह ध्वनि उस विशेष दृश्य के प्रभाव को और अधिक प्रभावी बना देता है।

## ध्वनि के प्रकार

ध्वनि प्रभाव कृत्रिम अथवा मूल स्रोत से तैयार किया जाता है, जो कि चरित्र को प्रभावी बनाने एवं अन्य कार्य में प्रयोग किया जाता है। यह एक रिकॉर्डेड ध्वनि होती है जो कि मुख्य रूप से कथा कहने या फिर बिना संवाद या संगीत के रचनात्मक प्रभाव उत्पन्न करती है। इसका अधिकतर प्रयोग मोशन पिक्चर्स और टेलीविजन निर्माणों में किया जाता है। वस्तुतः संवाद, संगीत और ध्वनि प्रभाव अलग-अलग हैं।

ध्वनि प्रभाव मुख्यतः निम्न प्रकार की होती हैं-

1. यथार्थवादी ध्वनि प्रभाव
2. सांकेतिक ध्वनि प्रभाव
3. सामूहिक ध्वनि प्रभाव

4. प्रभाववादी ध्वनि प्रभाव

5. सांगीतिक प्रभाव

चूँकि नाट्य प्रस्तुति दृश्य और श्रव्य दोनों होता है, अतएव ये आवश्यक है कि श्रव्य के अंतर्गत पाठ्य, संगीत और ध्वनि प्रभाव तीनों का समावेश किया जाना चाहिये। इस सम्मिश्रण में ध्वनि प्रभाव के तीन रूप दिखते हैं-

**1. कठोर ध्वनियाँ**

ऐसी ध्वनियां जो सामान्य रूप से दर्शकों तक पहुंचती हैं। इनके लिये रिकार्डेड ट्रैक की जरूरत नहीं पड़ती। यह मुख्यतः अभिनेता के कार्य व्यापार से उत्पन्न होती है। जैसे- अभिनेता का दरवाजे को जोर से पीटना।

**2. वातावरणीय ध्वनि प्रभाव**

ऐसी ध्वनियां जो दर्शकों को किसी विशेष परिस्थिति का आभास कराती हैं। जैसे- रात को दूर से आने वाली झींगुर की आवाजें।

**3. फोले साउंड**

चलते हुए अभिनेता के पैरों की आवाज आदि फोले साउंड के माध्यम से दी जाती हैं।

**5. डिजाइन साउंड इफेक्ट**

ऐसे ध्वनि प्रभाव जो किसी प्राकृतिक स्रोत से रिकॉर्ड नहीं किये जा सकते तथा इन्हें रिकॉर्ड करने के लिए विशेष रूप से तैयार करना पड़ता है। जैसे- भविष्य में आने वाली मशीनों की आवाज या फेंटेसी के दृश्यों के लिए आदि।

इस प्रकार कई तरह की ध्वनि सामग्रियां नाट्य प्रस्तुति में प्रयुक्त की जाती हैं। ये ध्वनि प्रभाव कभी मूल स्रोत से अथवा कभी स्टुडियो में रिकॉर्ड किये जाते हैं। पर कभी-कभी कुछ ध्वनि प्रभावों को रिकार्ड करनें के लिए अग्रिम अनुमति लेनी पड़ती है।

## पाठगत प्रश्न 5.5

1. रंगमंच में ध्वनि तकनीक से क्या तात्पर्य है?

..............................................................................................................

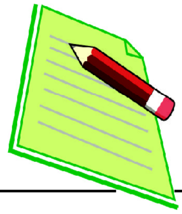

टिप्पणी

2. श्रव्य के अंतर्गत नाटक में क्या-क्या तत्व होते हैं?

.....................................................................................................

3. ध्वनि प्रभाव के कितने प्रकार हैं?

.....................................................................................................

4. फोले साउंड क्या है?

.....................................................................................................

## आपने क्या सीखा

- रंगमंच तकनीक के अंतर्गत रंगसज्जा, प्रकाश व्यवस्था व ध्वनि प्रभावों की तकनीक का प्रयोग किया जाता है।
- जब हम रंगतकनीक संज्ञा का प्रयोग करते हैं तो यह एक सामूहिक अर्थ प्रकट करता है। रंगमंच अर्थात नाटक, अभिनय (कार्यकलाप व वाचन), रंगसज्जा, रूपसज्जा, लाइट, वेशभूषा, साउंड आदि का समन्वित रूप।
- आदिम रंगमंच से लेकर प्रेक्षागृह उद्‌भव तक इसी माध्यम को लेकर विचार किया जाता रहा। दृश्यता व श्रव्यता को ध्यान में रखकर प्रेक्षागृह की कल्पना की गई।
- आज रंगमंच में रंगसज्जा दो अर्थ प्रस्तुत करता है। रूढ़् तकनीकी अर्थ में इसका तात्पर्य चित्रित पर्दों, झालरों, चौखटों एवं कुछ विशेष प्रकार के यांत्रिक उपकरणों व आकृतियों से होता है जो आकाश, वृक्ष, तख्त आदि की छवि प्रस्तुत करते हैं। परंतु अधिक विस्तृत अर्थ में वे सभी दृश्य तत्व जो मंच पर प्रदर्शन के समय अभिनेता के चारों ओर उपस्थित रहते हैं- मंच सामग्री या अन्य वस्तुएँ, वस्त्र व प्रकाश एवं उपर्युक्त विशाल दृश्य आकृतियाँ इस शब्द की सीमा में आ जाती हैं।
- रंगमंच तकनीक की आधुनिक विधाओं में सेट, लाइट, साउंड, इफेक्ट आदि को देखा जा सकता है। जब तक नाट्य प्रस्तुतियाँ खुले में की जाती थीं तब तक इन सभी की आवश्यकता नहीं थी किंतु बंद प्रेक्षागृहों ने इन आवश्यकताओं को जन्म दिया। इन आधुनिक विधाओं का जन्म पश्चिम में मंच प्रकाश के साथ आरंभ हुआ।
- रंगमंच में नाटक की प्रस्तुति को प्रभावशाली बनाने में प्रकाश व्यवस्था का बहुत बड़ा योगदान है क्योंकि रंगमंच में अभिनय, मंच परिकल्पना, रूप सज्जा, निर्देशन, वस्त्र सज्जा आदि सभी महत्वपूर्ण विधाएँ होने के बावजूद प्रकाश व्यवस्था के बिना दर्शकों

पर अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ सकती क्योंकि नाटक की दृश्यता उसकी प्रस्तुति को निखारती है और दृश्यता केवल प्रकाश से ही संभव है, चाहे वो प्रकृतिक हो या कृत्रिम।

- नाट्य प्रस्तुति दृश्य और श्रव्य दोनों होता है, अतएव ये आवश्यक है कि श्रव्य के अंतर्गत पाठ्य, संगीत और ध्वनि प्रभाव तीनों का समावेश किया जाना चाहिये।

## पाठांत प्रश्न

1. रंगमंच तकनीक से आप क्या समझते हैं?
2. रंग-सज्जा की क्या भूमिका है?
3. रंगमंच पर प्रकाश व्यवस्था के बारे में आप क्या जानते हैं?
4. प्रकाश के कौन-कौन से उपकरण हैं?
5. ध्वनि तकनीक के संदर्भ में बतलाइये?

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**5.1**

1. जब हम रंग-तकनीक संज्ञा का प्रयोग करते हैं तो यह एक सामूहिक अर्थ प्रकट करता है। रंगमंच अर्थात नाटक, अभिनय (कार्यकलाप व वाचन), रंगसज्जा, रूपसज्जा, लाइट, वेशभूषा, साउंड आदि का समन्वित रूप और तकनीक अर्थात व्यवहार का वह तरीका जो आसानी से परिकल्पना को साकार कर दे।

2. प्राय: रंगमंच की शुरुआत एक लिखित नाटक से होती है। नाटककार अपनी कल्पना से नाट्य लेखन करते हुए रंगमंच के सभी अवयवों के प्रयोग को निध ारित करता है। उदाहरण के लिए- मंच पर लाइट कब आएगी। अभिनेता कहाँ से मंच पर प्रवेश करेगा और कब, कहाँ की ओर प्रस्थान करेगा।

3. नाटक का निर्देशन करते हुए निर्देशक भी प्राय: कुछ तकनीकों का प्रयोग करता है जिसका संबंध नाटक की प्रस्तुति से होता है। पूर्वाभ्यास के दौरान निर्देशक इन तकनीकों के माध्यम से अभिनेता के अभिनय को निर्देशित करता है।

4. दृश्य-बंध वास्तव में नाटक के लिए बने मंच पर प्रस्तुत एक ऐसा रूप है जो प्राय: नाटक में आदि से अंत तक रहता है। यह दृश्य-योजना का समन्वित रूप है।

5. दृश्य-श्रव्य तकनीक और आलोकन तकनीक।

6. विकृष्ट मध्यम

7. ग्रीक रंगमंच में पहाड़ों को काटकर बनाए गए रंगमंच के साथ ही मुखौटे (जिनमें ध्वनि विस्तार के लिए चोंगेनुमा व्यवस्था थी), गद्देदार जूते (ताकि अभिनेता का आकार बड़ा दिखे) आदि का प्रयोग मिलता है।

8. पश्चिम रंगमंच में कृत्रिम प्रकाश का प्रयोग मध्ययुग के बाद से मिलता है।

9. तमिलनाडु और केरल के नाट्य प्रदर्शनों के कुछ रूपों में आलोकन एक अन्य प्रकार के रोचक दीपकों से किया जाता है। नारियल के खोल को दो अध 'गोलाकार आकृतियों में काटकर दीपक पात्र के रूप में प्रयोग किया जाता है।

10. 'स्ट्रीप लाइट' बांस कि बनाई जाती है।

**5.2**

1. रंगमंच तकनीक की आधुनिक विधाओं में सेट, लाइट, साउंड, इफेक्ट आदि को देखा जा सकता है।

2. प्रकाश व्यवस्था के क्षेत्र में नया प्रयोग सर्वप्रथम इतालवी कलाकार 'सेबस्तीनों सरेलियो' ने किया। सेबस्तीनों सरेलियो ने (1475-1554) वास्तुशिल्प एवं मंच के अलावा दृश्यमूलक चित्र लगाने के विषय में सोचा। इस जानकारी के साथ रोमन रंगमंच का अनुकरण कर आयताकार हॉल का निर्माण किया। सरेलेयो के अनुसार मंच की पृष्ठभूमि से लेकर 'विंग्स' और 'पैनल' से होते हुए रंगशाला में रंगीन दृश्यावली का निर्माण किया गया।

3. रंगीन प्रभाव उत्पन्न करने के लिए बोतलों में रंगीन तरल पदार्थ डालकर उन्हें जलती मोमबत्तियों के सामने रख कर उपयोग किया गया।

4. सन 1781 ई. गैस बत्ती का आविष्कार हुआ गैस बत्ती का प्रयोग कब किया गया?

5. एम.जे. डुबोसेक ने इसी वृत्त प्रकाश के अनेक महत्वपूर्ण उपकरणों जैसे बेबी लाइट, फ्रेजनल, हेलोजन, पेजेंट, फ्लड लाइट,पी.सी., प्रोफाइल, पार एक अतिरिक्त प्रभाव उत्पन्न करने हेतु इन उपकरणों का प्रयोग शुरू किया। एम.जे. डुबोसेक ने मंच आलोकन में क्या प्रयोग किया?

टिप्पणी

5.3

1. रंगमंच में रंगसज्जा दो अर्थ प्रस्तुत करता है। रूढ़ तकनीकी अर्थ में इसका तात्पर्य चित्रित पर्दो, झालरों, चौखटों एवं कुछ विशेष प्रकार के यांत्रिक उपकरणों व आकृतियों से होता है जो आकाश, वृक्ष, तख्त आदि की छवि प्रस्तुत करते हैं। परंतु अधिक विस्तृत अर्थ में वे सभी दृश्य तत्व जो मंच पर प्रदर्शन के समय अभिनेता के चारों ओर उपस्थित रहते हैं- मंच सामग्री या अन्य वस्तुएँ, वस्त्र व प्रकाश एवं उपर्युक्त विशाल दृश्य आकृतियाँ इस शब्द की सीमा में आ जाती हैं।

2. रंग सज्जा का प्रथम एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य नाट्य क्रिया को स्थान प्रदान करना तथा घटना स्थल की उपयुक्त एवं स्पष्ट पहचान स्थापित करना है। प्रेक्षागृह का पर्दा खुलनें के बाद दर्शक सबसे पहले दृश्य सज्जा का ही अवलोकन करती है। इससे वह सहज ही अनुमान लगा लेती है कि संपूर्ण नाटक का घटना स्थल युद्ध भूमि है, घर का अतिथि कक्ष है।

3. नाट्य का स्थल निर्धारण, नाट्य क्रिया में अभिवृद्धि, नाट्य क्रिया को अलंकृत करना, उसे रोचक बनाना।

4. रेखाओं, रंगों एवं अन्य तत्वों के माध्यम से रोचक संयोजन बनाकर रंग सज्जा द्वारा आकर्षक एवं अर्थपूर्ण पृष्ठभूमि का निर्माण किया जा सकता है।

5.4

1. रंगमंच में नाटक की प्रस्तुति को प्रभावशाली बनाने में प्रकाश व्यवस्था का बहुत बड़ा योगदान है क्योंकि रंगमंच में अभिनय, मंचपरिकल्पना, रूपसज्जा, निर्देशन, वस्त्रसज्जा आदि सभी महत्वपूर्ण विधाएँ होने के बावजूद प्रकाश व्यवस्था के बिना दर्शकों पर अपना कोई प्रभाव नहीं छोड़ सकती क्योंकि नाटक की दृश्यता उसकी प्रस्तुति को निखरती है और दृश्यता केवल प्रकाश से ही संभव है, चाहे वो प्रकृतिक हो या कृत्रिम।

2. दृश्यता, विश्वसनीयता, प्लास्टिक क्वालिटी, कंपोजीशन, मूड

3. तीव्रता, रंग, वितरण, गति

4. फ्लड लाइट, स्पॉट लाइट, इफेक्ट लाइट

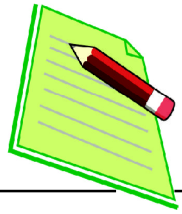

टिप्पणी

5.5

1. नाटक के प्रभाव को तीव्र करने के लिए ध्वनि का प्रयोग किया जाता है। ध्वनि तकनीक से यहाँ तात्पर्य पात्रों की वाणी और संवादों के बोलने से उत्पन्न ध्वनि न होकर मंच पर संगीत या कुछ विशेष ध्वनियों से है जो वातावरण को बनाने में सहायक होती हैं।

2. श्रव्य के अंतर्गत पाठ्य, संगीत और ध्वनि प्रभाव तीनों का समावेश किया जाता है।

3. ध्वनि प्रभाव के प्रकार हैं

   यथार्थवादी ध्वनि प्रभाव

   सांकेतिक ध्वनि प्रभाव

   सामूहिक ध्वनि प्रभाव

   प्रभाववादी ध्वनि प्रभाव

   सांगीतिक प्रभाव

4. चलते हुए अभिनेता के पैरों की आवाज आदि की ध्वनियों को फोले साउंड कहते हैं।

टिप्पणी

# 6

# प्रबोधचंद्रोदय

प्रिय शिक्षार्थी पूर्व पाठ में कुंदमाला नाटक के रचनाकार, कथानक, पात्र और नाट्य युक्तियों के विषय में जाना। इस पाठ में हम प्रबोधचंद्रोदय नाटक के विषय में जानेंगे।

प्रबोध चन्द्रोदय में यहां श्री कृष्ण मिश्रा ने एक गंभीर दार्शनिक विचार को संस्कृत नाटक की परंपरा में नाटक का मुख्य आधार बनाया है। इस प्रकार के कथानक को लेकर नाटक लिखना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है क्योंकि इससे मनोरंजकता में कमी आ सकती है। लेकिन श्री कृष्ण मिश्र ने बड़ी ही कुशलता और चतुराई के साथ ऐसे गंभीर विचारधारा को कथा में परिवर्तित करने का कार्य किया। जिस तरीके से उन्होंने मानव और उसके अंदर चल रहे अंतर्द्वंद के संघर्ष को नाटक में जगह दी है यह वास्तव में बहुत ही रचनात्मक है। श्री कृष्ण प्रबोध चंद्रोदय के लेखन में नाटक के नियमों का उल्लंघन भी नहीं करते। संवादों का प्रयोग भी प्रदर्शन को ध्यान में रखकर किया जाता है। मौलिक रूप से इस नाटक में अद्वैत वेदांत और विष्णु भक्ति का समन्वय है लेकिन कहीं भी दार्शनिकता और उपदेश नाटक के गति को शिथिल नहीं करते। इस कारण से प्रबोध चन्द्रोदय नाटक आज भी इतना गंभीर होने के बावजूद रंगमंच पर आकर्षण पैदा करता है। इन्हीं विशेष पक्षों पर हम इस पाठ में चर्चा करेंगे।

## अधिगम के प्रतिफल

इस पाठ को पढ़ने के उपरांत आप-

- प्रबोधचंद्रोदय नाटक के रचनाकार श्रीकृष्ण मिश्र के विषय में जानते हैं;
- प्रबोधचंद्रोदय नाटक के कथानक के विषय में जानते हैं;
- प्रबोधचंद्रोदय नाटक के पात्रों का चरित्र चित्रण जानते हैं और कथावस्तु के मनुष्य पात्रों का अभिनय कर पाते हैं; और
- प्रबोधचंद्रोदय नाटक में प्रयुक्त नाट्ययुक्तियों के विषय में जानते हैं।

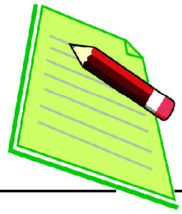

टिप्पणी

## 6.1 प्रबोधचंद्रोदय का सामान्य परिचय

प्रबोध चंद्रोदय के रचनाकार श्री कृष्ण मिश्र का समय लगभग 11वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जाता है। श्री कृष्ण का निवास स्थान मगध था। प्रबोधचंद्रोदय श्रीकृष्ण मिश्र की एकमात्र रचना हमें प्राप्त होती है। संस्कृत में प्रबोधचंद्रोदय एक गंभीर और दार्शनिक रूप से प्रतीक नाटक है। 6 अंकों में मानव जीवन का चित्रण किया गया है। नाटक में श्रीकृष्ण मिश्र ने मनुष्य के हृदय की दो प्रवृत्तियों का चित्र प्रस्तुत किया है। एक वृत्ति आत्मज्ञान की ओर प्रवृत्त है और दूसरी वृत्ति उससे विमुख होती दिखाई देती है। मन के दो पुत्रों के विरोध की कल्पना है और यह दोनों सौतेले भाई हैं जो मन की प्रवृत्ति और निवृत्ति से उत्पन्न हुए हैं। इनका नाम मोह और विवेक है। मोह के पक्ष में काम, रति, लोभ, हिंसा और अहंकार है। मिथ्या दृष्टि को एक कुल्टा के रूप में दिखाया गया है। भौतिक सुख साधनों में प्रवृत्त वृत्ति का प्रतिनिधित्व चार्वाक करता है। वहीं दूसरी और दूसरे पक्ष का प्रमुख विवेक है जिसके साथ मति, करुणा, शांति, श्रद्धा, क्षमा, संतोष और वस्तु विचार है। विवेक स्वयं को कुछ देर के लिए पराजित महसूस करता है उसकी सेना छिन्न-भिन्न हो जाती है लेकिन आखिर में विवेक की ही जीत होती है। इस विजय में विष्णु भक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह नाटक का मुख्य कथानक है।

इसके साथ ही साथ श्रद्धा और शांति की कथा भी जोड़ी गई है। शांति जो अपनी माँ को खो चुकी है जिसका नाम श्रद्धा है। श्रद्धा पर दुष्ट प्रवृत्तियों का आक्रमण होता है लेकिन वह विष्णु भक्ति के द्वारा सुरक्षा प्राप्त करती है। श्रीकृष्ण मिश्र ने अपने इस कथानक में बहुत ही कुशलता के साथ मानव प्रवृत्तियों को चरित्र रूप में प्रस्तुत किया है।

कथानक में वे कुशलता के साथ उस दौर में प्रचलित प्रमुख जैन धर्म बौद्ध धर्म और ब्राह्मण धर्म में श्रद्धा का अभाव दिखलाते हैं। नाटक में एक लंबे संघर्ष के बाद सत्य पक्ष की जीत होती है जिसे संग्राम विजय के रूप में दिखाया गया है। राजा मन अपने पुत्र को और पत्नी प्रवृत्ति के वियोग में बहुत दुखी होते हैं लेकिन सच्चे सिद्धांतों और वेद ज्ञान के द्वारा उनमें धीरज बँधता है और वह निवृत्ति को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। आखिर में विवेक का मिलन उपनिषद से होता है और इसी उपनिषद से प्रबोध होते हैं और विद्या से सभी का संसार निवृत्त हो जाता है।

## 6.2 प्रबोधचंद्रोदय के प्रमुख पात्र

नाटक के पात्रों की सूची इस प्रकार है-

**(पुरुष पात्र)**

सूत्रधार :- नाटक का आचार्य

टिप्पणी

## प्रबोधचंद्रोदय

नटी :- उसकी पत्नी

विवेक :- प्रधान नायक

मति :- नायक की पत्नी

वस्तु विचार :- विवेक का मित्र

संतोश :- उसका सहचर

पुरुष :- उपनिषद् का पति

प्रबोधोदय :- पुरुष का पुत्र

श्रद्धा :- सात्विकी, राजसी, तामसी

शांति :- विवेक की बहन

करुणा :- श्रद्धा की सखी

विष्णु भक्ति :- उपनिषद् की सखी

उपनिषद् :- वेदांत शास्त्र

सरस्वती :- विष्णु भक्ति की सखी

क्षमा :- विवेक की सखी

| | |
|---|---|
| वैराग्य | |
| निदिध्यासन | मन के पुत्र |
| संकल्प | |

| | |
|---|---|
| परिपाश्र्विक | |
| पुरुष | अन्य पात्र |
| सारथि | |
| प्रतिहारी | |

महामोह :- प्रतिनायक

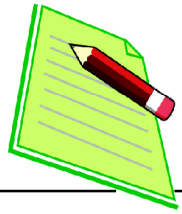

टिप्पणी



| | |
|---|---|
| चार्वाक | :- मोह का मित्र |
| काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, अहंकार | मोह के अमात्य |
| मन | :- संकल्पात्मक |
| कापालिक | :- सोम सिद्धांत का प्रवर्तक |
| महंत | :- दुराचारी मठ पति |
| मिथ्यादृष्टि | :- मोह की पत्नि |
| विभ्रमावति | :- उसकी सखी |
| रति | :- काम की पत्नी |
| हिंसा | :- क्रोध की पत्नी |
| तृष्णा | :- लोभ की पत्नी |
| बटु, शिष्य, पुरुष, दौवारिक | अन्य पात्र |

उपर्युक्त पात्रों के नाम से यह स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण मिश्र ने इस नाटक में वेदांत दर्शन को उद्देश्य बनाया है। मनुष्य के वेदांत ज्ञान में सहायक और बाधक दोनों ही प्रवृत्तियों को श्रीकृष्ण मिश्र ने चरित्र रूप में दिखलाया है। दोनों ही प्रवृत्तियों के संघर्ष को पात्र संघर्ष के रूप में चित्रित कर उन्होंने दर्शकों को इनसे अवगत कराया गया है।

## पाठगत प्रश्न 6.1

1. प्रबोधचंद्रोदय के लेखक कौन हैं?

..........................................................................................................

2. श्रीकृष्ण मिश्र का समयकाल क्या है?

..........................................................................................................

टिप्पणी

3. प्रबोधचंद्रोदय किस प्रकृति का नाटक है?

.......................................................................................................

4. प्रबोधचंद्रोदय में कितने अंक हैं?

.......................................................................................................

5. प्रबोधचंद्रोदय का नायक कौन है?

.......................................................................................................

6. प्रबोधचंद्रोदय का प्रतिनायक कौन है?

.......................................................................................................

7. मति कौन है?

.......................................................................................................

8. रति कौन है?

.......................................................................................................

9. चार्वाक कौन है?

.......................................................................................................

10. विष्णु भक्ति कौन है?

.......................................................................................................

## 6.3 प्रबोधचंद्रोदय नाटक की कथावस्तु

कुंदमाला नाटक में कुल छः अंकों में कथानक को वर्णित किया गया है। नाटक के लिए श्रीकृष्ण ने दार्शनिक विचारों को आधार बनाया है। नाटक की कथा वस्तु कुछ इस प्रकार है-

### प्रथम अंक

मन की दो स्त्रियाँ हैं- प्रवृत्ति और निवृत्ति। उनसे उत्पन्न मोह और विवेक एक दूसरे के विरोधी हो जाते हैं। विवेक के साथ शांति, श्रद्धा, और मोह के साथ काम, लोभ, तृष्णा, क्रोध और हिंसा आदि हैं। अंक के आरंभ में काम और रति का प्रवेश होता है। रति काम से कहती

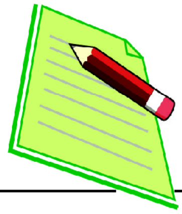

टिप्पणी

है कि मोह के लिए विरोधी विवेक एक समस्या है। काम उसे यकीन दिलाता है कि तुम स्त्री हो इसीलिए इससे डर रही हो नहीं तो विवेक का कोई अस्तित्व नहीं है। तुम जो विवेक के मंत्री यम और नियम की बात कर रही हो, उनके लिए तो केवल हमारा चित्तविकार ही काफी है। मद, मात्सर्य के सामने तो यह यम नियम ठहर ही नहीं सकते हैं। रति काम से यह भी पूछती है कि मैंने सुना है आप और विवेक एक ही कुल से हैं। काम कहता है कि बस वंश एक है। यह क्यों पूछती हो? बस हम दोनों के पिता एक हैं। हमारे पिता मन ने इस संसार को अपने बल पर अर्जित किया है। हम दोनों ही अपने पिता को प्रिय थें। और हमने उन पर अपना अधिकार कर लिया। यह विवेक हम लोगों को और पिताजी को अपने रास्ते से हटाना चाहता है। रति पूछती है कि क्या यह पाप केवल ईर्ष्या और द्वेष से किया जा रहा है। इस पर काम कहता है कि तुम भयभीत हो जाओगी। हमारे कुल में विद्या नाम की एक राक्षसी जन्म लेने वाली है। इस बात से रति डर कर काम से लिपट जाती है। काम उसे यकीन दिलाता है कि हमारे रहते विद्या की उत्पत्ति नहीं होगी। तुम बस धैर्य धरो। रति पूछती है कि क्या विवेक इस विद्या का जन्म चाहते हैं? यह विद्या तो उनका भी नाष कर देगी। उत्तर में काम कहता है कि हाँ। वहीं दूसरी ओर मति और विवेक आपस में बात कर रहे होते हैं। विवेक मति से कहता है कि यह अभागा काम हम लोगों को ही पापी बतला रहा है। मति पूछती है कि पुरुष तो स्वाभाविक रूप से आनंद में है तो फिर इन लोगों ने उसे कैसे बंध न में डाला। विवेक कहता है कि होशियार आदमी भी स्त्रियों के द्वारा बंधन में पड़ जाता है। यह भी माया के द्वारा ही बंधन में डाले गए हैं। मति उसके उद्धार का कारण पूछती है और विवेक कहता है कि उपनिषद के साथ हमारा संबंध अगर हो तभी प्रबोध की उत्पत्ति होगी और यह बंधन छूट सकता है।

### दूसरा अंक

दूसरे अंक में मोहराज दंभ को बुलाता है और कहता है विवेक ने प्रबोधक उदय की प्रतिज्ञा की है और तीर्थों की ओर शम दम को भेजा है। यह हमारे वंश के पतन का समय आ गया है। इसलिए सभी को सावधान करो कि वह इसका विरोध करें। पृथ्वी में सभी की मुक्ति का स्थान काशी है और वहाँ जाकर चारों आश्रम में विघ्न पैदा करो। मैंने यहाँ अपना प्रभाव जमाया है। धूर्त लोग शराब पीकर वेश्याओं के पास रात बिताते हैं और सुबह-सुबह इस तरह का स्वांग रचते हैं कि लोग उन्हें तपस्वी समझें। तभी दक्षिण से अहंकार आता है और कहता है कि यहाँ रहने वाले सब मूर्ख हैं फिर भी उन्हें पांडित्य का गौरव है। साधु लोग अपना सिर मुड़ाकर वेदांत का दावा करते हैं। इस तरह कहता हुआ अहंकार दम्भ के आश्रम में पहुँचता है। वहाँ सजावट देखकर कुछ समय के लिए उसी स्थान को अपना विश्राम स्थल बनाता है। उसे आते देखकर दम्भ का शिष्य उससे कहता है कि अलग ही रहिए। बिना पैर धोए वहाँ नहीं जाना होता। ऐसा कर अहंकार वहाँ जाने को तैयार होता है लेकिन दंभ अपनी चेष्टा से बटु को उसे रोकने के लिए कहता है। अहंकार को बड़ा आश्चर्य होता है। अहंकार अपने विषय में बताता है तब दम्भ उसे पहचानते हुए कहता है अरे यह तो मेरे दादाजी हैं। पहचानने के बाद दम्भ अहंकार के पैरों में प्रणाम करता है। अहंकार दंभ से कहता है मैंने द्वापर युग के अंत में तुम्हें

बालक के रूप में देखा था। तुम अब बड़े हो गए हो और बड़े होने के कारण मैं तुमको पहचान नहीं सका। तुम्हारे परिवार में सब कुशल हैं? दम्भ अहंकार से कहता है हाँ वह लोग भी यहीं हैं। अहंकार दंभ से मोह के बारे में पूछता है और विवेक के संबंध में चर्चा करता है। तभी मोह का आगमन होता है। उसके साथ चार्वाक मत भी आता है और अपने मत का प्रचार करता है। चार्वाक सिद्धांत को सुनकर वह बड़ा प्रसन्न होता है। चार्वाक और दम्भ के बीच बातचीत होती है। चार्वाक कहता है कि विष्णुभक्ति नाम की एक योगिनी है। कल इन्होंने उसका प्रचार रोक दिया है। फिर भी उसका बहुत बड़ा प्रभाव है। वह जहाँ रहती है उस वंश की ओर देखना भी बड़ा कठिन हो जाता है। तभी मध्यमान का संदेश लेकर एक पुरुष आता है। उसके पत्र को पढ़कर पता चलता है कि शांति अपनी माता श्रद्धा के साथ विवेक को उपनिषद से मिलाने के लिए दिन-रात उपनिषद को समझा रही है। मोह कहता है कि जब काम उसके विपक्ष में है तो फिर उसकी क्या हैसियत है। मध्यमान से हमारा आदेश कहना कि धर्म को बाँधकर रखें। तभी क्रोध और लोभ अपना गुण प्रकट करते हुए मंच पर प्रवेश करते हैं। मोह शांति को अपने वश में करने के लिए उपाय सोचता है।

## तृतीय अंक

मिथ्यादृष्टि श्रद्धा का ग्रहण कर लेती है और शांति श्रद्धा की खोज में वन, पर्वत, नदी तक ढूंढती फिरती है। करुणा नाम की सखी के कहने पर शांति श्रद्धा को पाखण्डालयों में खोजने चलती है। वहाँ दिगंबर जैन साधुओं को वह देखती है जो अपने मत को श्रेष्ठ बताते घूमते रहते हैं। वहाँ उसे श्रद्धा मिलती है। लेकिन वह तामसी श्रद्धा होती है। खोज के इसी सिलसिले में शांति बौद्ध भिक्षुओं के पास भी जाती है। वहाँ बौद्ध भिक्षु भी अपने मत को श्रेष्ठ बनाता हुआ घूम रहा होता है। वहाँ भी शांति को तामसी श्रद्धा के दर्शन होते हैं। जैन और बौद्ध मत में श्रेष्ठता को लेकर शास्त्रार्थ होता है। शांति आगे बढ़कर सोमसिद्धांत को देखती है जिससे जैन साधु उसका सिद्धांत दर्शन पूछते हैं। सोम सिद्धांत ने नारी और मदिरा के लालच में भिक्षुओं को अपनी और आकर्षित कर लिया है। कापालिक वेश धारण किए हुए राजसी श्रद्धा उन दोनों को अपने आलिंगन में लेकर मदिरा का सेवन कराती है। नाम के समान होने से शांति को यह संदेह होता है कि यह मेरी माता श्रद्धा नहीं है। तभी करुणा बताती है कि तुम्हारी माता श्रद्धा विष्णुभक्ति के पास है यह तो कोई दूसरी राजसी श्रद्धा है।

## चतुर्थ अंक

श्रद्धा और मैत्री आपस मे बातें कर रही हैं। मैत्री श्रद्धा से कहती है कि मैंने मुदिता से सुना है कि तुम्हें विष्णुभक्ति देवी ने महाभैरवी के चंगुल से छुड़ाया है। यही जानकर मैं तुमसे मिलने के लिए आई हूँ। श्रद्धा महाभारती वाली घटना उसे बताती है। मैत्री भी अपनी कथा श्रद्धा से कहती है कि हम चारों बहनें महात्माओं के हृदय में रहती हैं। वह यह भी बतलाती है कि देव विवेक ने वस्तुविचार को बुलावा भेजा। विवेक विवेकवस्तु विचार से कहता है कि मोह के साथ हम लोगों का युद्ध आरंभ हो गया है। मोह की ओर से काम मुख्य योद्धा है और हमने

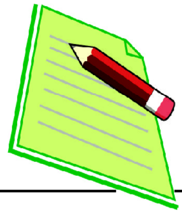

टिप्पणी

आपको उससे लड़ने के लिए चुना है। वस्तु विचार कहता है कि मेरे लिए यह कोई कठिन कार्य नहीं है। काम को जीतना कौन सी बड़ी बात है। क्षमा कहती है कि मैं क्रोध पर विजय अवश्य पालूंगी और क्रोध को जीतने के बाद हिंसा, मदमान स्वयं अपनी हार मान लेंगे। लाभ को जीतने के लिए संतोष को बुलाया जाता है। संतोष कहता है कि हमें बनारस पर चढ़ाई की तैयारी करना चाहिए। राजा विवेक भी अपनी सेना को भेजने का आदेश दे देता है।

### पंचम अंक

पांचवें अंक में विवेक की सेना मोह पर प्रहार कर देती है और विवेक की सेना से जब मोह का संहार हो जाता है तब श्रद्धा इस निष्कर्ष पर आती है कि अपनों का विरोध हमेशा कुल का संहार करने वाला होता है। विष्णु भक्ति और शांति श्रद्धा से मिलते हैं और पूछते हैं कि युद्ध का क्या समाचार है। श्रद्धा कहती है कि देवी के विरोध से जो होना चाहिए वही हुआ। दोनों ओर की सेना आमने सामने खड़ी हुई विवेक ने मोह के पास दूत के रूप में न्यायदर्शन को भेजा। दूत ने जाकर मोह से कहा कि वह देवस्थान को छोड़कर पीछे हट जाए नहीं तो उस का समूल नाश हो जाएगा। यह सुनकर मोह को बहुत क्रोध आया और उसी समय हमारी सेना के आगे सरस्वती प्रकट हुई। बहुत ही भयानक युद्ध हुआ और मोह पक्ष के सभी लोग हताहत हुए। मोह कहीं छुप गया। जब यह सारा समाचार मन ने सुना तो अपने पुत्रों की मृत्यु से उसे बहुत कष्ट हुआ। प्रवृत्ति के मरने के समाचार ने तो उसे तोड़ ही दिया। तभी उसके पास सरस्वती पहुँचीं और उन्होंने मन को संसार के इस वास्तविक रूप का परिचय कराया। वह वैराग्य की ओर झुकें और निवृत्ति को मन की पत्नी के पद पर नियुक्त किया गया। इस प्रकार अंततः मन को शांति प्राप्त हुई।

### छठा अंक

अब शांति और श्रद्धा निश्‍चिंत होकर आराम से रहने लगीं। तभी एक दिन शांति ने राजकुल का समाचार श्रद्धा से पूछा। श्रद्धा ने उसे समझाया कि पुरुष ने संबंध का त्याग करके वैराग्य को अपना लिया है। श्रद्धा से उसे यह भी पता चला कि इस स्थिति में भी मोह ने अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ा है । वह पुरुष को खुश लाने के लिए मधुमति को नियुक्त करता है। और मधुमति पुरुष को कल्पना दिखलाती है, माया हामी भर देता है, मन उसका अनुमोदन कर देता है और संकल्प उसे प्रोत्साहित करता है। पुरुष भी सहमत हो जाता है लेकिन तभी पार्श्ववर्ती तत्व समय पर इस मायाजाल का पर्दाफाश करके पुरुष को सचेत कर देते हैं। पुरुष विवेक को देखने की इच्छा प्रकट करता है और उपनिषद को भी बुलावा भेजता है लेकिन उपनिषद विवेक से मिलने में आनाकानी करती रहती है क्योंकि विवेक ने मुश्किल समय में उसका साथ छोड़ दिया था जिससे उपनिषद को बहुत कष्ट सहने पड़े थें। शांति उपनिषद को समझाती है। तब कहीं जाकर उपनिषद विवेक से मिलती है। पुरुष से उपनिषद अपनी आपबीती सुनाती है। पुरुष उपनिषद से पूछता है कि इतने दिन तुमने कैसे बिताये? उपनिषद कहती है कि मैं मठ और पुराने देवालय जैसी जगहों में रही हूँ। वहां मैंने रहने वालों को अर्थ का अनर्थ करते देखा है। और इस तरह उपनिषद अपनी आपबीती सुनाती है। इसी समय निदिध्यासन प्रकट होती है और उपनिषद से कहती है कि तुम्हारे गर्भ से विद्या और प्रबोध

टिप्पणी

नाम की दो संताने उत्पन्न होंगी। विद्या को संघर्ष विद्या द्वारा मन में संक्रांत कराने और प्रबोध चंद्र को पुरुष के हाथों में सौंप कर तुम विवेक के साथ विष्णुभित्त के पास चली जाओ। अंत मे यही होता है। प्रबोध उदय होने से पुरुष का अंधकार दूर हो जाता है और पुरुष को विष्णुभक्ति के आनंद से मुक्ति मिलती है।

## पाठगत प्रश्न 6.2

1. पात्र मन की दो स्त्रियों के क्या नाम हैं?

   ..........................................................................................................

2. विवेक और मोह कौन हैं?

   ..........................................................................................................

3. अहंकार किस अंक में प्रवेश करता है?

   ..........................................................................................................

4. विवेक और मोह कौन से अंक में युद्ध करते हैं ?

   ..........................................................................................................

5. मन को शांति कब मिलती है?

   ..........................................................................................................

6. नाटक का कथानक किस प्रवृत्ति का है ?

   ..........................................................................................................

## 6.4 प्रबोधचंद्रोदय का सैद्धांतिक अनुप्रयोग

संस्कृत नाटकों की शृंखला में अध्यात्म के विषय को लेकर नाटक की रचना करना एक महत्वपूर्ण कार्य और चर्चा का विषय रहा है। कृष्ण मिश्र के नाटक प्रबोधचंद्रोदय की चर्चा 11वीं शताब्दी के बाद भी विद्वानों में होती रही है। संभवत: यह नाटक पहला प्रतीक नाटक है जिसमें प्रवृत्तियों को चरित्र रूप में दिखला कर उनके संघर्ष को रंगमंच पर रूपायित करने का प्रयास किया गया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा भी इसी शैली में भारत दुर्दशा नाटक की याद सहज ही हो आती है जिसमें वह भारत की दुर्दशा के प्रमुख कारक तत्वों को चरित्र रूप में प्रस्तुत करते हैं।

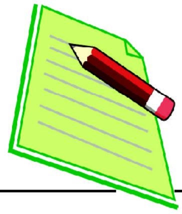

टिप्पणी

वास्तव में प्रबोधचंद्रोदय शांत रस प्रधान नाट्य है। यदि हम नाट्यशास्त्र में वर्णित रसों को देखें तो हमें केवल आठ रस ही प्राप्त होते हैं। शांत रस को नाट्य में आचार्य भरत ने प्रयुक्त नहीं किया है। किंतु 11वीं शताब्दी में नौवें रस के रूप में शांत रस की स्थापना होती है और श्रीकृष्ण मिश्र इस रस को लक्ष्य बनाकर प्रबोधचंद्रोदय लिखते हैं। रंगमंच पर श्रद्धा, ज्ञान, भक्ति, विवेक, बुद्धि, क्रोध, अहंकार जैसे अमूर्त भावों को चरित्र रूप में देखना अपने आप में रोचकता से भरा हुआ है। कथानक में किसी पौराणिक और ऐतिहासिक घटनाओं के बजाय वेदांत के अद्वैतवाद को कहानी के रूप में दिखाने की कल्पना केवल कृष्ण मिश्र ही कर सकते हैं।

कृष्ण मिश्र की नाट्य रचना ने कालांतर में कई रूपकों को जन्म दिया। कई नाटककारों ने इसका अनुप्रयोग करते हुए अपने रूपकों की रचना की है। जैसे यशपाल ने 13वीं शताब्दी में 'मोहपराजय' नाम का रूपक लिखा तो वेंकटनाथ ने 14वीं शताब्दी में 'संकल्पसूर्योदय' नाम पर रूपक लिखा। यह परंपरा रुकी नहीं। 16वीं शताब्दी में गोकुलनाथ ने 'अमृतउदय' नाम का रूपक लिखा। श्रीनिवास दीक्षित ने 'भावनापुरुषोत्तम' और कर्णपूर ने 'चौतन्य चंद्रोदय' नाम के रूपक की रचना की। 17 वीं शताब्दी के अंत और 18वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में वेदकवि ने 'विद्यापरिणय' तथा वरदाचार्य ने 'यतिराजविजय' नाम के प्रतीकात्मक रूप लिखें। श्री कृष्ण मिश्र के प्रबोध चंद्रोदय को जानना इसका तात्पर्य है संस्कृत नाटकों की परंपरा में एक ऐसी नाट्य शैली को जानना जिसने पारंपरिक कथानक प्रयोग को छोड़कर एक नवीन रचनात्मक कथानक को ग्रहण किया।

## पाठगत प्रश्न 6.3

1. प्रबोधचंद्रोदय का मुख्य रस कौन सा है?

   ..........................................................................................................

2. हरिश्चंद्र द्वारा रचित प्रतीकात्मक नाटक कौन-सा है?

   ..........................................................................................................

3. मोहपराजय रूपक के लेखक कौन हैं?

   ..........................................................................................................

4. संकल्पसूर्योदय रूपक कब लिखा गया ?

   ..........................................................................................................

5. प्रतीकात्मक नाटक से क्या अभिप्राय है?

   ..........................................................................................................

## आपने क्या सीखा

- प्रबोधचंद्रोदय के लेखक श्री कृष्ण मिश्र हैं।
- श्रीकृष्ण मिश्र का समय काल एक 11वीं शताब्दी है।
- श्रीकृष्ण मिश्र ने वेदांत के अद्वैतवाद के सिद्धांत को अपने नाटक के कथानक का मुख्य आधार बनाया है।
- संस्कृत नाटक की परंपरा में पहली बार श्रीकृष्ण मिश्र ने एक दार्शनिक विचार को चरित्र रूप में रूपायित कर नाटक की रचना की।
- प्रबोधचंद्रोदय शांत रस प्रधान नाटक है।
- प्रबोधचंद्रोदय 6 अंकों का नाटक है।
- प्रबोधचंद्रोदय का नायक विवेक है और प्रति नायक मोह है।
- प्रबोध चंद्रोदय में विवेक और मोह के मध्य चलने वाले संघर्ष की कहानी है। इसमें विवेक के साथ मति, वस्तुविचार, संतोष, श्रद्धा, शांति, विष्णु भक्ति, उपनिषद तथा मोह के साथी हैं-लोभ, दम्भ, क्रोध, काम, चार्वाक, अहंकार, मिथ्यादृष्टि इत्यादि।
- प्रबोधचंद्रोदय की शैली में परवर्ती संस्कृत नाटककारों ने अपने रूपकों की रचना की है जिसमें उन्होंने पात्र के रूप में मानवीय वृत्ति तथा अदृष्य मनोविकारों को चरित्र बनाया है।

## पाठान्त प्रश्न

1. संस्कृत नाट्यलेखन की श्रृंखला में प्रबोधचंद्रोदय का क्या महत्व है?
2. प्रबोधचंद्रोदय नाटक की मूलकथा के विषय में बतलाइए?
3. प्रबोधचंद्रोदय के नामकरण के विषय में बतलाइए?
4. प्रबोधचंद्रोदय के अनुप्रयोग के बारे में बतलाइये?
5. प्रबोधचंद्रोदय के किसी एक पात्र का अभिनय करके दिखाइए।

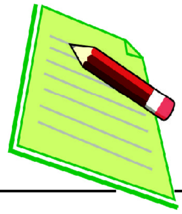

टिप्पणी

## पाठगत प्रश्नों के उत्तर

**6.1**

1. श्रीकृष्ण मिश्र
2. लगभग 11वीं शताब्दी
3. प्रतीकात्मक प्रकृति का नाटक
4. छः अंक
5. विवेक
6. मोह
7. नायक विवेक की पत्नी
8. काम की पत्नी
9. भौतिक सुख साधनों में लिप्तता की भावना
10. उपनिषद् की सखी

**6.2**

1. प्रवृत्ति और निवृत्ति
2. नायक और प्रतिनायक
3. द्वितीय अंक
4. पंचम अंक
5. दार्शनिक

**6.3**

1. शांत रस
2. भारतदुर्दशा
3. यशपाल (13वीं शतादी)
4. 14वीं शतादी
5. वे नाटक जिनमें अमूर्त तत्वों को चरित्र रूप में मूर्त किया जाय।

## राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

**नाट्यकला ( 285 ) प्रायोगिक पक्ष**

# आदर्श प्रश्न पत्र

**माध्यमिक स्तर** **समय– 1 घंटा**

अधिकतम अंक– 40

- सभी प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न 5 अंक का है। 5×8=40

**भाग–1. प्रश्न संख्या 1 से 5 तक का उत्तर शिक्षार्थी द्वारा स्वयं से अभिनय करके देना है।**

1. आंगिक अभिनय के प्रकारों में से किसी एक प्रकार के आंगिक अभिनय का अभिनय करके दिखाइए।
2. सामान्य अभिनय के प्रयोग में अनुलाप का अभिनय करके दिखाइए।
3. सात्त्विक भावों को बताते हुए सत्त्व का प्रयोग करके अभिनय करके दिखाइए।
4. प्रबोधचंद्रोदय नाटक के किसी एक पात्र का अभिनय करके दिखाइए।
5. रस के नौ प्रकारों में से किसी एक रस की भाव भंगिमा को अभिनय द्वारा स्पष्ट कीजिए।

**भाग–2 प्रश्न संख्या 6 से 8 तक के प्रश्नों का उत्तर शिक्षार्थी द्वारा मौखिक रूप से स्पष्ट करके बताना है।**

6. रंगमंच में प्रकाश व्यवस्था क्यों आवश्यक है। स्पष्ट कीजिए।
7. रंग तकनीक की किसी एक विधा को स्पष्ट कीजिए।
8. अपने पास उपलब्ध संसाधनों का प्रयोग करते हुए किसी एक सजीव की निर्माण विधि को बताइए।

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

# राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्थान)

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर- 62, नोएडा - 201 309 (उत्तर प्रदेश)

वेबसाइट : www.nios.ac.in निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393 आईएसओ 9001: 2008 प्रमाणित